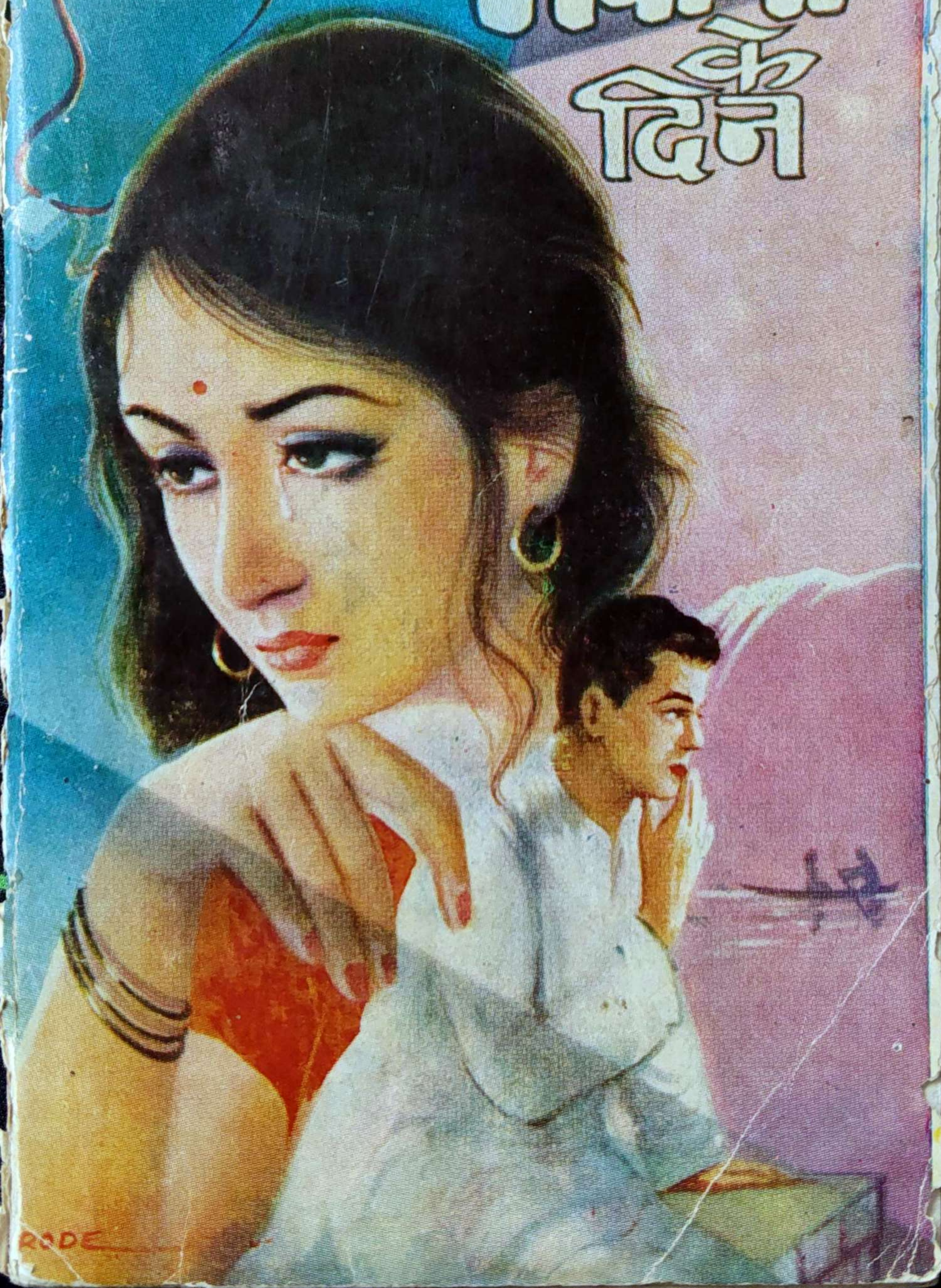
कुशवाहा 'कान्त'

जवानी के दिन



- चिनगारी प्रकाशन के उपहार सिरीज के अन्तर्गत दो उपन्यास एक साथ प्रकाशित।
- सुप्रसिद्ध उपन्यासकार कुशवाहा कान्त के इस बहु-प्रशंसित उपन्यास के साथ लोकप्रिय उपन्यासकार जयन्त कुशवाहा का एक रोचक उपन्यास संलग्न।
- मूल्य में अतिरिक्त वृद्धि नहीं।

पृष्ठ संख्या लगभग ४००

●

मूल्य–दस रुपये

व्योम-मण्डल के उमड़ते-घुमड़ते बादलों को विकराल पंक्तियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि आज इन्द्र भगवान यावत् मृत्युलोक को जल-वृष्टि द्वारा प्लावित कर देंगे। गगन का विस्तृत क्षेत्र भी संकुचित हो गया था। पयोदरों की गोद में बिजलियाँ चमकने लगीं और मूसलाधार पानी झमाझम बरसने लगा। आकाश-मंडल में आती हुई पानी की बूंदों को वायु तीव्र गति से धरा पर नियन्त्रित करने लगी।

"कोई है? कोई है? झोपड़ी में कोई है?" अर्द्धरात्रि की वेला में किसी ने पुकारा।

फूस की आच्छादित झोपड़ी के भीतर दीनानाथ एक टूटी चारपाई पर पड़ा कराह रहा था। उसकी तबीयत तीन-चार दिनों से खराब चल रही थी। उसकी धर्म-पत्नी अर्द्धरात्रि होने पर भी बैठी हुई उसके पैर दाब रही थी।

"कोई है? कोई है?" की लगातार आवाज ने उसे चौंका दिया—"देखो, कौन बाहर पुकार रहा है।"

दीनानाथ ने धर्म पत्नी से कहा।

वह कान उधर कर आहट लेने लगी, किन्तु वायु की सन-सनाहट में कुछ सुनाई न पड़ा। मेघ झमाझम बरस ही रहा था।

कोई है ? की आवाज उसे पुनः कर्णगोचर हुई।

"यह लो....पुन किसी ने पुकारा। हे भगवान कौन है, क्या होने वाला है नाथ ! जाओ....जाओ...बाहर जाकर देखो कौन पुकार रहा है। पुकारने वाले का स्वर बड़ा ही सरस मालूम हो रहा है।" दीनानाथ ने करवट लेते हुए कहा।

धर्मपत्नी चारपाई से उठी। दरवाजे को जरा-सा खोलकर देखा। घने अंधेरे में कुछ दीख न पड़ा। इसके विपरीत वायु के झकोरों ने उसे घबड़ा दिया।

तत्क्षण दरवाजा बन्द कर पास आ बोली—"तुम पागल हो रहे हो क्या ? भला ऐसे बुरे समय में कौन ऐसा है जो अपने प्राणों की परवाह न कर घर से बाहर घूमता रहेगा। देख नहीं रहे हो, कितनी तेज हवा चल रही है, कितना मूसलाधार पानी बरस रहा है।"

पत्नी की बातें सुन दीनानाथ प्रसन्न हो गया किन्तु उसके कान न जाने किस वाणी की खोज कर रहे थे। दूसरे ही क्षण "कोई है ?" की वाणी पुनः उसे सुन पड़ी।

"देखो, फिर वही आवाज, अच्छा अब तुम बैठो, मत जाओ। मैं ही जाता हूँ।" वह बोला।

"नहीं....नहीं...तुम....मत...."

किन्तु पत्नी की आवाज पूरी होने के पहले ही दीनानाथ चार-पाई से उठ दरवाजे के समीप पहुँच गया। अन्धकार घना हो रहा था। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। बौछार पड़ रही थी। फिर भी वह बाहर सर निकालकर देखने का उपक्रम करने लगा।

"जरा दीपक जलाओ तो...." मन्द स्वर में पत्नी से दीनानाथ ने कहा।

ताख पर रखे हुए एक मिट्टी के दीपक को उसने जलाया। वायु की तीव्रता में दीपक का आलोक स्थायी न रह सका। ठीक उसी समय बिजली चमकी। उसके क्षीण आलोक में उसने देखा—सामने ही छजरे के सहारे एक स्त्री उठँगी हुई काँप रही थी। जरा और पास जा देखा—उसके समस्त कपड़े भींग गये थे। दन्त-पंक्तियाँ कटकटा रही थीं—उसके भींगे हुए आँचल में एक नवजात शिशु था—जो अभी-अभी का पैदा हुआ-सा प्रतीत होता था। तत्क्षण दीनानाथ का हृदय द्रवीभूत हो गया। वास्तव में दीनता के भाव का अनुभव एक दीन को ही होता है।

"अन्दर चलिए...." उस भींगी हुई अबला से उसने कहा।

"नहीं, मेरे अन्दर चलने की आवश्यकता नहीं है। इस समय मेरे पास इतना अवकाश नहीं है।" उसने कहा।

"तो मुझे क्यों पुकार कर परेशान किया आपने ?"

"इसलिए कि क्या आप कृपा कर मेरी कुछ सहायता करना स्वीकार कर सकते हैं ? आप स्वयं देखते हैं—मैं भींग गई हूँ, जाड़े से काँप रही हूँ। कुछ ऐसी ही बातें हो गयीं, जिसके कारण इस बालक को लेकर ऐसे समय में घर से निकलना पड़ा। क्या आपसे मैं कुछ सहायता की उम्मीद कर सकती हूँ...." उस स्त्री ने कहा।

"बेशक, मैं तुम्हारी मदद करूँगा...." दीनानाथ ने कहा—"किन्तु इसके पहले अन्दर तो हो लो।"

नवयुवती अधिक हठ न कर सकी और झोपड़ी के अन्दर चली ही गई।

दीपक पुनः जला। उसके क्षीण प्रकम्पित प्रकाश में दम्पति ने ध्यान से उसका मुखमण्डल देखा। देखते ही दङ्ग रह गया—"ऐसा मुख तो राजरानियों का भी न होता होगा....''अनायास ही उसके मुख से निकल गया। सचमुच उसके मुख तथा उद्दीप्त नेत्रों से ऐसा ही तेज झाँक रहा था।

"इसे अपनी ही झोपड़ी समझ रात्रि यहीं व्यतीत करिए, पुनः प्रातःकाल होने पर...'' दीनानाथ ने कहा।

"नहीं, इस समय तनिक भी नहीं ठहर सकती। यदि आप इस बालक को रख सकें तो प्रातःकाल आकर मैं पुनः इसे ले जाऊँगी।

न जाने कौन-सा आकर्षण था उस नारी रूप में कि दीनानाथ उसके अनुरोध को टाल न सका। एक बार अपनी पत्नी की ओर देख पुनः हाथ फैलाकर उसने उस बालक को ले लिया। दूसरे ही क्षण वह सतेजधारी मूर्ति दरवाजा लाँघ बाहर हो गई।

घने अँधेरे ने उसे अपनी गोद में छिपा लिया।

● ●

दाऊजी के परलोकगमन के बाद कितने ही सुनहले दिन आये और चले गये। कितनी ही बार चन्द्र नवीन रूप धारण कर धरा पर अवतरित हो पुनः विलीन हो गया। घने अंधकारों से भरी कितनी ही रातें आयीं और चली गयीं, किन्तु वैभवशाली मदन और दर-दर की ठोकरें खाने वाली तिल्लो के सम्पर्क में किंचित परिवर्तन न हो सका। इसके विपरीत चलती हुई घड़ी की सूईयों की तरह दोनों का प्यार बढ़ता ही गया।

"प्रिये !....कभी-कभी व्यथा से दुखित हो मदन पुकारता।

"जीवनाधार !"

कहती हुई तिल्लो उसकी छाती से चिपक जाती।

तिल्लो अब वही दर-दर की ठोकरें खाने वाली नहीं रह गई थी। समय-चक्र ने उसमें नितांत परिवर्तन कर दिया था। प्रत्येक समय प्रभात-कालीन सूर्य की भाँति उसका यौवन देदीप्यमान रहता। रेशम से मुलायम घुँघराले काले केश नितम्ब तक झूमते रहते। सदैव वह साज-श्रृङ्गार से युक्त रहती। ऐसा क्यों ? इसलिए कि अब वह एक बड़े घर की बधू थी और थी सुहागिन। हीरे-मोती इत्यादि अलंकारों से उसकी काया भरी रहती थी। यथास्थान जवाहिरात स्थित हो अग्निकुण्ड में घृत-आहुति का कार्य करते थे। इतने [illegible]न्न घर में रहते हुए भी न जाने क्यों वह विपुरी-विपुरी सी र[illegible]ी थी। कभी-कभी नेत्रों से दो चार बूँदें गिर जाया करती थीं। [illegible]हा नहीं जा सकता, ऐसा क्यों था ? शायद अतीत की बातें सोचकर।

किन्तु अब उसे सन्तोष था। उसकी नैया का खेवैया दैव ने निर्धारित कर दिया था और उसे तपस्विनी से राजरानी बना दिया था। मदन की अपरिमित स्नेह छत्रछाया में वह सब कुछ भूल गई थी। वर्तमान में रह गया था पतिदेव मदन और स्वयं वह।

× × ×

हाँ तो उस दिन सावन की घनी अँधेरी रात थी। आसमान पर विकराल बादलों की पंक्तियां दौड़ लगा रहीं थीं—अलसायी-सी खिन्नमना हो वह एक मुलायम गद्दे पर बैठी हुई थी। इतने मुलायम गद्दे पर भी तिल्लो का हृदय व्याकुल था। उसके दृग

चंचल रूप से द्वार की ओर दौड़ लगा रहे थे, न जानें क्यों ? शायद वे किसी की प्रतीक्षा में थे ।

इतने में नेत्रों के समक्ष आ गया उसका जीवनधार ! वह कुछ घबड़ाया-सा प्रतीत हो रहा था ।

"प्राण !....प्राण !....जल्दी करो । डाक्टर साहब आ रहे हैं ।" व्यग्र भाव से आते ही मदन ने कहा ।

"हैं...डाक्टर....क्यों....क्यों....किसके लिए ?" आश्चर्ययुक्त हो तिल्लो ने पूछा ।

"पूछती हो किसके लिए....तुम्हारे लिये प्राण !"

"मेरे लिए.... मुझे क्या हुआ है जो डाक्टर साहब को लिवा आये हो । पागल हो रहे हो क्या मेरे जीवनाधार !...."

"मैं पागल नहीं हो रहा हूँ प्राण ! तुम मुझसे छिपाती हो । इधर कई दिनों से देखता हूँ भोजन ठीक से नहीं करती हो और करती भी हो तो—इसीलिये आज मैं डाक्टर साहब को लिवाता आया.... वे बाहर बरामदे में बैठे हैं ।"

तिल्लो लजारो लता-सी लजा गई और अपने आप ही में तेजी से सिमट गई । बोली धीरे से—"तुम बिलकुल पागल हो रहे हो....मुझे कोई रोग नहीं हुआ है ।"

"मैं पागल नहीं हूँ....पागल तुम हो ! जब कोई रोग नहीं हुआ है तो तुमको भोजन... ऊँह, छोड़ो इन बातों को....चलो मेरे साथ....तुरन्त फैसला हो जायगा ।"

"नहीं मैं नहीं जाऊँगी...."लज्जावती तिल्लो ने पति के गले से लिपटते हुये कहा ।

"नहीं....नहीं....जिद मत करो प्राण ! तुम्हें चलना ही पड़ेगा ।"

"मैं समझने को तैयार हूँ प्राण।....पर डाक्टर साहब हँसेंगे तो क्या होगा...."

"तू बड़ी पगली है....भला कोई डाक्टर मरीज को देखकर हँसता है ?" बोला मदन।

"किन्तु कोई मरीज हो....तब तो।"

"साफ-साफ बतलाओ प्राण। आज तुम पहेली-सी बन रही हो....ऐसा क्यों है मेरी रानी !"

"तुम खीझते हो....नहीं, नहीं....खीझो मत।"

"तो तुम साफ-साफ क्यों नहीं बतलाती हो ?"

तिल्लो की बातों से मदन की आकांक्षा वेगवती होती जा रही थी। उसने कहा—"साफ साफ कहो मेरी रानी।"

"ओफ्....मैं कैसे बताऊँ, मुझे बड़ी शर्म लग रही है।"

"शर्म....शर्म लग रही है कहते हुए....मुझसे....अपने पति से।"

तिल्लो के नेत्र जमीन की ओर झुक गये—"ताज्जुब है, अभी तक आप समझ नहीं सके।" धीरे से उसने कहा।

एकाएक मदन तिल्लो की बातों का भाव समझ गया। तत्क्षण उसके रोम-रोम प्रफुल्लित हो गये। हृदय का आनन्द नेत्रों को नृत्य कराने लगा।

"क्या यह सच है मेरी रानी ?" उसने व्यग्रता से पूछा।

"जाओ, मैं नहीं जानती....तुम बड़े शोख हो।"

कहती हुई तिल्लो शर्म से दुहरी हो गई।

मदन हँसता हुआ कमरे के बाहर हो गया।

× × ×

धीरे-धीरे रात-दिन व्यतीत होने लगे। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये तिल्लो की झोली बढ़ती ही गई।

इसी तरह एक दिन ऐसा हुआ कि...

उस दिन भी द्वार पर शहनाई बज रही थी। चारों ओर खुशी थी। तिल्लो महावर से एड़ियों को रक्ताभ किये थी। निमन्त्रित लोगों से घर भरा था। तिल्लो माँग में सुहाग-सिन्दूर भरे अपने सारे शरीर को आभूषणों से आच्छादित किये, रेशमी साड़ी पहने, चाँदी के पट्टे पर बैठी थी। उस दिन भी वह वधू ही थी, उसी विवाह के दिन की भाँति, उसी मिलन की पहली राति की भाँति आज भी उसे खुशी थी।

इसका कारण? कारण था उसका पुत्र प्रसव करना।

अहा! कितना सुन्दर था वह बालक!

देखते ही विभोर हो गई थी वह।

* *

जल्दी ही पानी का बरसना बन्द हो गया। व्योम का घेरा साफ नजर आने लगा। ऊषा-आगमन से अँधेरे का राज्य क्षीण होने लगा। धीरे-धीरे ऊषाकाल का स्निग्ध आलोक यावत् जगत पर छा गया।

"अभी तक वह नहीं आई, न जाने क्यों? देर हो गई, आती ही होगी।" झोपड़ी के अन्दर बैठा हुआ दीनानाथ सोच रहा था।

वह उद्विग्न होकर उस नारी के आने की बाट जोह रहा था। रात्रि की घनघोर वर्षा का जल चारों ओर फैला हुआ था। उसमें

किसी प्रकार के छप्-छप् शब्द को सुन दीनानाथ झोपड़ी के दरवाजे पर आ देखने लगता....कहीं वही तो नहीं आई। पर हाय...देखते ही कलेजा बैठ जाता, पुनः वापस आ सोचने लगता।

धीरे-धीरे दिन चढ़ा, व्यतीत भी हो गया। रात्रि आई, वह भी चली गई। पर वह नहीं आई, न जाने क्यों? रात-दिन व्यतीत होने लगे। अब उस रमणी के आने, की आशा दम्पति ने त्याग दी। वे उस बालक का अपने तनय की भाँति पालन-पोषण करने लगे। उसे अपना ही कहकर लोगों को बताया।

अभागा दीनानाथ परिश्रम से थकित संध्या समय जब उस बालक से बातें करता तब उसे परम सुख का अनुभव होता। नवकिसलय से बातें करते हुए अधरोष्ठ भीनी-भीनी वायु लहरी से हिलते हुए अर्धविकसित गुलाब पंखड़ियों की भाँति फड़क उठते। उसकी सुधारस सिंचित बोली मन को दिव्य बना देती। सरिता-तरङ्ग की भाँति दिल को लहरा देती। बातें करते-करते कभी ताली पीट हँस देता उस समय कुन्द कली-सी दन्त-पंक्तियाँ मयङ्क की भाँति उदित नेत्रों को चौंधिया देतीं।

सचमुच उस समय दीनू आत्म-विभोर हो जाता। पुकार उठता—धन्य है देव तेरी अद्भुत लीला!

दीनानाथ की गणना उन मनुष्यों में की जाने योग्य थी जिन्हें यावत जगत दरिद्र नाम से जानता है। जिसे पेट भर भोजन और नींद भर सोना हराम रहता है। फिर भी वह खुश रहता है। यों तो पहले उसके पास सब कुछ था—धन-दौलत, ऐश-आराम। किन्तु काल के कौतूहल से सब विलीन हो गया और वह दर-दर की भीख माँगने वाला भिखारी रह गया?

इस दशा को पहुँचने पर भी वह खुश था। सोच थी तो केवल एकमात्र सन्तान की। यह फकीरी हालत होने पर भी निशिवासर थे युगल मूर्ति एक सन्तान के लिए लालायित रहते थे। पर भाग्य की उलट-फेर अचानक इतना कीमती रत्न पाते ही उन युगल मूर्तियों के रोम-रोम पुलकित हो गये। उनका मलिन्द मन थिरकने लगा। वे दोनों आनन्द विभोर हो बोल उठे—"धन्य है महामाया की लीला।"

× × ×

ज्यों-ज्यों जीवन बड़ा होने लगा त्यों-त्यों वे युगल मूर्ति अपने को अत्यन्त सुखी कहने लगे। कभी-कभी गाँव की स्त्रियाँ एकत्रित हो, अनेकों प्रकार की बातें जीवन के सम्बन्ध में करतीं। समस्त हृदयगत् विचार दूर कर चूम लेतीं उस अछूत बालक का भोला मुख मंडल।

× × ×

संसार में अधिकांश ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं, जो अछूतों से घृणा करते हैं और उन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं। किन्तु जीवन के विषय में यह बातें न थीं। हालांकि वह एक प्रणयपुत्र पुत्र था तथा उसका पालन भी एक अछूत प्राणी के घर हो रहा था। फिर भी उसकी नन्हीं-नन्हीं आँखों में न जाने कौन-सा आकर्षण था जिसके प्रभाव से आकर्षित हो प्रत्येक व्यक्ति उसे चूमने के लिए लालायित हो जाता।

जीवन को गोद में लिए जब कभी वे युगल मूर्ति किसी के दरवाजे पर भिक्षा हेतु पहुँच जाते तो वह प्राणी कितना ही

निर्दयी क्यों न होता, उनकी मूर्ति देख पिघल जाता। फौरन गृहणी से कुछ न कुछ मँगाकर उन्हें दे देता।

• •

सन्ध्या समय फूस की छोटी-सी झोपड़ी में दीनानाथ की धर्म-पत्नी बैठी हुई रोटियाँ पका रही थी। पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ रहा था। वह अपनी रोटियाँ पकाने में तन्मय थी। उसी समय बाहर से आवाज आई—

"सुनती हो, इस बार बारह वर्ष के बाद कुम्भ लगा है।"

धर्म-पत्नी की धुन टूट गई, उसने देखा झोपड़ी के दरवाजे पर स्वयं पतिदेव खड़े मुस्कुरा रहे थे।

उसने प्रत्युत्तर के लिए मुँह खोला ही था कि उसकी आँखों का तारा जीवन आ पहुँचा। वह पिता की बातों को सुन लिया था शायद, इसीलिए बोला—"बाबूजी! बाबूजी! मैं भी चलूँगा मेला देखने, क्या आप मुझे नहीं लिवा चलोगे?"

"नहीं बेटा! वहाँ पर बहुत भीड़ होगी। अपना शरीर बचाना मुश्किल हो जायगा। तुम्हें लिये-लिये मैं कहाँ तक घूमूँगा।" दीनानाथ ने पुचकारते हुए कहा।

"बहुत भीड़ रहने से क्या होगा बाबूजी! मैं आपके साथ ही साथ रहूँगा। देखो बाबूजी, कितनी ही बार मैं आपके साथ घूमने गया, क्या कभी साथ छोड़ा था?" जिद पकड़ते हुए जीवन बोला।

"नहीं बेटा! तुम हठ मत करो। अगर कहीं भूल गये तो मेरी दुनिया ही बरबाद हो जायगी। हाँ, तुम्हारे लिए मैं थोड़ा

लाऊँगा....तुम उस पर सवारी करना....और भी बहुत-सी चीजें तुम्हारे लिए लाऊँगा।" दीनानाथ ने कातर स्वर में कहा।

किन्तु बालक ही तो, अपनी जिद पर अड़ गया और ठुनकने तथा हिचकियाँ ले-लेकर रोने लगा।

धर्मपत्नी ने भोजन बनाना छोड़ दिया और उसे गोद में उठाकर पुचकारती हुई बोली—"रोओ मत, मैं तुम्हें मेला ले चलूंगी।"

× × ×

गङ्गा-यमुना-सरस्वती के संगम पर बड़ी रेल-पेल मची हुई थी। झुण्ड पर झुण्ड गिर पड़ते थे। स्नानार्थियों को प्राण बचाना मुश्किल पड़ गया था। इस उपस्थित जनमण्डली की धक्का-धुक्की में जो नीचे गिरता, उसका उठना बड़ा ही दुरूह पड़ जाता। ऊपर की भीड़ उसे उठने का समय ही नहीं देती थी।

ऐसी धक्का-धुक्की में बेचारा दीनानाथ अपने जीवन को साथ लिए संगम से वापस लौट रहा था। अचानक पूर्व की ओर से तीव्र वायु की भाँति जन-समुदाय का झटका आया। दीनानाथ झटका संभालने में असमर्थ हो गया और नियत रास्ते से भीड़ के साथ दूर चला गया। इसी भीड़-भाड़ में उसका साथ अपने तनय जीवन से छूट गया। काफी दूर जाने पर उसने ख्याल किया—मेरा बालक, क्या हुआ?....जीवन भीड़ के झटके में कहाँ गया।

"हा देव! अब क्या होगा?...कहाँ होगा मेरा लाल?" बिलख-बिलख कर वह बालकों-सा रोने लगा, छटपटा-छटपटा उसे खोजने लगा।

लाख कोशिश करने पर भी वह न मिला। पाने की आशा विलीन होते देख उसे उन्माद-सा हो गया। ● ●

उसके नेत्रों के समक्ष अतीत के चित्र नृत्य कर रहे थे। खिन्न मन हरे ड्रेसिङ्ग रूम में बैठा हुआ मदन सोच रहा था—"तिल्लो के हृदय पर मेरा कितना अधिकार है। उसको मेरे प्रति कितनी श्रद्धा, कितनी ममता निहित है। मुझे उस समय अनुभव नहीं हुआ, जबकि ताऊजी ने कहा था—"जाओ बेटी! कुछ जलपान का प्रबन्ध करो इनके लिए।" उसने सिमटी-सिमटी-सी दृष्टि उठा कर देखा था....उसके नयन पुतलों पर "चलिए" शब्द अंकित हुआ किन्तु वास्तविक सहानुभूति का अनुभव उस समय हुआ जब कि मैं पहले-पहले ड्रेसिङ्ग रूम में आया और देखा।

समस्त कमरा सौन्दर्य से भरा था। उसकी फर्श कितनी स्वच्छ थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो अभी-अभी प्रक्षालित की गई हो। उसमें उपस्थित प्रत्येक वस्तुएं करीने के साथ रखी थीं। जिसके कारण वे एक विचित्र आभा से द्विगुणित हो रही थीं। उद्यान की ओर से ऐसी भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी मानो सभी वस्तुओं पर विलायती सेण्ट छिड़क दिया गया हो। उसी क्षण रोम-रोम पुलकित हो गया। तिल्लो के प्रति एक प्रकार की असीम ममता जागृत हो गई। एक अज्ञात प्रेरणा उससे घुल-घुल कर बातें करने के लिए प्रेरित करने लगी। अनायास मुंह से निकल गया—"वाह....वाह....यह मेरा वही कमरा है या देवालय-सा बदला हुआ कोई दूसरा! ओफ्! इतनी स्वच्छता, इसका कारण?"

तिल्लो को मेरी प्रत्येक वस्तु से इतनी ममता क्यों? कुछ समझ में न आया। क्षणमात्र दृष्टि उठाकर देखा—अनायास मुंह से निकल पड़ा—'अरे यह क्या? हे भगवान! यह मैं आंखों से क्या देख रहा हूं?....कौन है मेरी मूर्ति को इतना चाहने वाला, जिसने मेरे गले में इतनी सुगन्धित माला डाल रखी है! मुझे

सम्बन्ध सूत्र में बाँध लिया है।"

ठीक उसी समय हाथ में मिष्ठान लिए हुए अवसादमयी तिल्लो आ गई। उसने अनायास मेरे मुँह से निकले वाक्यों को सुन लिया। वह अपने तन-बदन में सिमट-सी गई थी। धीरे से पानी देकर चली गई वह। मैं सिर थामकर कुर्सी पर बैठ गया। न जाने क्या-सोचने लगा। इतने ही में आवाज आई —"इस तरह आप बैठे-बैठे क्या सोच रहे हैं। लीजिए पान खाइये।"

"इस नन्दन कानन के एक कोने में स्थित गन्धहीन, कंटकाकीर्ण पुष्प को चाहनेवाला अभी भी दुनिया में बाकी है। माफ कीजियेगा, क्या मैं पूछ सकता हूँ, वह महाशया कौन है!" कहते हुए मैंने पान लेने के लिए हाथ बढ़ाया और अपनी कठोर चुटकियों से उसकी नाजुक ऊँगलियों को दबा दिया।

दर्द से वह चीख उठी।

ठीक उसी समय ताऊजी ने पुकारा—"मेरे लाल!"

× × ×

करवट बदलते हुए ताऊजी ने कहा—"मदन, मेरे लाल! देखो, मेरी ओर देखो। इस तरह गड़े क्यों जा रहे हो। तुम्हारी परेशानी मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ। इस समय तुम्हें हार्दिक पश्चात्ताप हो रहा है। तुम्हारी आत्मा स्वयं तुम्हें कोस रही है। इसी कारण तो मैं कुछ कहता नहीं हूँ। उँह, छोड़ो उन बातों को। उनकी चिन्ता मत करो। इस तरह की गलती संसार में न जाने कितने नवयुवकों ने की है। इसीलिए कहता हूँ, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। किसी का कोई अपराध नहीं है।"

ताऊजी के वाक्यों से मदन पानी-पानी हुआ जा रहा था,

किन्तु ताऊजी कहते ही गये—"शैशव-युवावस्था का सन्धिकाल ऐसा ही भयानक होता है। उसके गर्भ में इतनी तीव्रता, इतना बवण्डर-आँधी, इतनी मादकता निहित रहती है कि संसार-मंच पर प्रायः निन्यानबे फीसदी व्यक्ति उसी गर्भ में डूब जाते हैं। एक बार घृणित कर्म कर बैठते हैं। तात्पर्य यह कि जितने भी बह जाते हैं वे लौटकर नहीं आते। इसका कारण जानते हो, नहीं! सुनो, भूल से, जान से अथवा अनजान से यदि एक बार मनुष्य अपने स्वत्व से पतन के गहरे गर्त में गिर गया तो क्या हुआ? यदि वह अपना दृष्टिकोण बदल दे तो पुनः उच्च श्रेणी पर आ सकता है। किन्तु जिन्हें गिर कर सतत गिरना ही आता है और वे उसी में प्रसन्न भी हैं, उनका गर्त से बाहर आना, नक्षत्रों को गूँथकर माला पहनना है। तुम्हें भी जितना गिरना था, गिर चुके। अब उठने की कोशिश करो।"

"किस तरह....किस तरह मैं अपनी कलंक-गाथा दूर कर सकता हूँ ताऊजी!...." मदन ने पूछा।

"ठहरो, इतनी शीघ्रता क्यों? मैं स्वयं सब बतलाता हूँ।" वे कहने लगे—"पूछते तो कलंक-गाथा किस प्रकार दूर कर सकोगे। जो कुछ होता है, सब ईश्वरीय प्रेरणा ही से होता है। फिर तुममें ताकत आयेगी, तुम कलंक-गाथा दूर कर सकोगे। अव्वल बात तो यह है कि तुम इसे दूर करने की इच्छा छोड़ दो, यह स्वयं दूर हो जायगी। उस समय जब कि तुम अपने कर्तव्य-पथ पर सच्चरित्रता से चलते चलोगे। उसका ऐसा असीम प्रभाव है कि उसकी छत्रछाया में ऐसे-ऐसे न जाने कितने अवगुण विलीन हो जाते हैं। स्मृति के द्वार पर भूल का पर्दा पड़ जाता है।

आवश्यकता है कठोर कर्तव्य करने की।

बन्धर्व सूत्र में बाँध लिया है।"

ठीक उसी समय हाथ में मिष्ठान लिए हुए अवसादमयी तिल्लो आ गई। उसने अनायास मेरे मुँह से निकले वाक्यों को सुन लिया। वह अपने तन-बदन में सिमट-सी गई थी। धीरे से पानी देकर चली गई वह। मैं सिर थामकर कुर्सी पर बैठ गया। न जाने क्या-सोचने लगा। इतने ही में आवाज आई—"इस तरह आप बैठे-बैठे क्या सोच रहे हैं। लीजिए पान खाइये।"

"इस नन्दन कानन के एक कोने में स्थित गन्धहीन, कंटका-कीर्ण पुष्प को चाहनेवाला अभी भी दुनिया में बाकी है। माफ कीजियेगा, क्या मैं पूछ सकता हूँ, वह महाशया कौन है!" कहते हुए मैंने पान लेने के लिए हाथ बढ़ाया और अपनी कठोर चुटकियों से उसकी नाजुक ऊँगलियों को दबा दिया।

दर्द से वह चीख उठी।

ठीक उसी समय ताऊजी ने पुकारा—"मेरे लाल!"

× × ×

करवट बदलते हुए ताऊजी ने कहा—"मदन, मेरे लाल! देखो, मेरी ओर देखो। इस तरह गड़े क्यों जा रहे हो। तुम्हारी परेशानी मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ। इस समय तुम्हें हार्दिक पश्चात्ताप हो रहा है। तुम्हारी आत्मा स्वयं तुम्हें कोस रही है। इसी कारण तो मैं कुछ कहता नहीं हूँ। उँह, छोड़ो उन बातों को। उनकी चिन्ता मत करो। इस तरह की गलती संसार में न जाने कितने नवयुवकों ने की है। इसीलिए कहता हूँ, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। किसी का कोई अपराध नहीं है।"

ताऊजी के वाक्यों से मदन पानी-पानी हुआ जा रहा था,

किन्तु ताऊजी कहते ही गये—"शैशव-युवावस्था का सन्धिकाल ऐसा ही भयानक होता है। उसके गर्भ में इतनी तीव्रता, इतना बवण्डर-आँधी, इतनी मादकता निहित रहती है कि संसार-मंच पर प्रायः निन्यानबे फीसदी व्यक्ति उसी गर्भ में डूब जाते हैं। एक बार घृणित कर्म कर बैठते हैं। तात्पर्य यह कि जितने भी बह जाते हैं वे लौटकर नहीं आते। इसका कारण जानते हो, नहीं! सुनो, भूल से, जान से अथवा अनजान से यदि एक बार मनुष्य अपने स्वत्व से पतन के गहरे गर्त में गिर गया तो क्या हुआ? यदि वह अपना दृष्टिकोण बदल दे तो पुनः उच्च श्रेणी पर आ सकता है। किन्तु जिन्हें गिर कर सतत गिरना ही आता है और वे उसी में प्रसन्न भी हैं, उनका गर्त से बाहर आना, नक्षत्रों को गूंथकर माला पहनना है। तुम्हें भी जितना गिरना था, गिर चुके। अब उठने की कोशिश करो।"

"किस तरह....किस तरह मैं अपनी कलंक-गाथा दूर कर सकता हूँ ताऊजी!...." मदन ने पूछा।

"ठहरो, इतनी शीघ्रता क्यों? मैं स्वयं सब बतलाता हूँ।" वे कहने लगे—"पूछते तो कलंक-गाथा किस प्रकार दूर कर सकोगे। जो कुछ होता है, सब ईश्वरीय प्रेरणा ही से होता है। फिर तुममें ताकत आयेगी, तुम कलंक-गाथा दूर कर सकोगे। अव्वल बात तो यह है कि तुम इसे दूर करने की इच्छा छोड़ दो, यह स्वयं दूर हो जायगी। उस समय जब कि तुम अपने कर्तव्य-पथ पर सच्चरित्रता से चलते चलोगे। उसका ऐसा असीम प्रभाव है कि उसकी छत्रछाया में ऐसे-ऐसे न जाने कितने अवगुण विलीन हो जाते हैं। स्मृति के द्वार पर भूल का पर्दा पड़ जाता है।

आवश्यकता है कठोर कर्तव्य करने की।

मनुष्यमात्र का केवल एक उद्देश्य होना चाहिए। वह उद्देश्य और कुछ नहीं, वह है एकमात्र सेवा। दुनिया के घृणित व्यक्तियों के साथ सहानुभूति और यथाशक्ति उनका भला करना। बस इतना ही तुम करना मेरे लाल! इतने में ही सब कुछ है....इतने ही का यह परिणाम है। मुझे देखो....आज मेरे लिए लोग क्यों विकल हैं....इसीलिए कहता हूँ....मेरी आँखें मुँदते ही तुम पुनः नूतन प्रणाली से मेरे इस कार्य को संसार-क्षेत्र में लेकर अवतरित होना। फिर देखो, तुम्हें विश्व अपना दोनों हाथ फैलाकर अपनाता है अथवा नहीं?"

"चलिये भोजन कर लीजिए...."किवाड़ की दराज से आवाज आई।

"जाओ, जाओ मेरे लाल! भोजन कर लो!" ताऊजी ने कहा।

× × ×

"तिल्लो, मेरी तिल्लो....मेरे लाल... मेरे प्राण...." ताऊजी ने द्वितीय चन्द्र के उदय होते ही पुकारा।

दोनों अपनी अलसायी आँखों को (जिनमें प्रगाढ़ निद्रा भरी थी) मलते हुए उनके पास आकर खड़े हो गये।

एकाएक ताऊजी का दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा और उन्होंने उनका एक-एक हाथ पकड़ लिया। ताऊजी हाथ थाम कर क्या करेंगे, वे कुछ भी न सोच सके।

"मदन! यह है मेरी अन्तिम घड़ी और यह है मेरी अन्तिम अमानत, देखते हो नऽ इसे।" एकाएक ताऊजी ने कहा—"उस समय यह एक पगली थी जिसे मैंने सरोवर के पास पाया था।

किन्तु अब यह मुझे प्राणों से भी प्रिय है। मैं अपनी यह जागीर तुम्हें सौंप रहा हूँ। देखना, भूल से भी इस पर गजब ढाने की कोशिश मत करना। इतना ही नहीं यह मेरी उपार्जित सम्पत्ति की भी अधिकारिणी है। जैसा कि मैंने वसीयतनामे में लिख दिया है।। काश दोनों भविष्य में प्रणय-सूत्र में परिवर्तित हो जाते ?"

ताऊजी की बातों से तत्क्षण दोनों झेंप गये।

"मदन! मेरे लाल, तिल्लो मेरी पुत्रवधू....चिरंजीवी रहो.... यह लो...."सिर की तरफ से एक लपेटा हुआ कागज का पुलिन्दा बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"यह है वसीयतनामा, इसी में सब कुछ लिखा है।"

एकाएक उनकी आँखें टकटकी लगाकर न जाने क्या देखने लगीं....शायद सदा के लिए!—

'ताऊजी, ताऊजी' कहते हुए वे दोनों उनकी चारपाई पर गिर पड़े थे।

ओफ्! कितना शीघ्र हर्ष का जगमगाता हुआ आलोक....शोक के भयानक काण्ड में बदल गया था।

ओफ्! अरे काल! तेरी महिमा कितनी निष्ठुर और कितनी निर्मम है, इस जगत का अवसान कितना शीघ्र होता है।

ठीक उसी समय तिल्लो ने पुकारा—"सुनते हो, आज मेरे शरद के लिए नमकीन लेते आना!"

एकाएक तिल्लो के शब्दों से मदन की ध्यानतन्द्रा टूट गई।

वह निमिष-मात्र को चौंक गया। न जाने किस ख्याल के आने से झेंप-सा गया। तत्क्षण उठकर वह अपनी प्रिया के पास चला गया।

× × ×

तब से बहुत समय व्यतीत हो गया। धीरे-धीरे शरद कुमार तीन वर्ष का हो गया। उसकी बाल्य-सुलभ चंचलता को देख-देख वे दोनों बलि-बलि जाते थे।

हाँ, कभी-कभी मदन की आँखों से शरद की चंचलता देख कर न जाने क्यों आँसुओं की दो-चार बूँदें गिर जाया करती थीं।

तिल्लो ने न जाने कितनी बार पूछा—"आप क्यों ऐसा करते हैं। आपके आँसुओं के गिरने का क्या कारण है ?"

किन्तु मदन शान्त हो रहता।

वह लाचार था। किस भाँति बतलाता—"तुम्हारे पहले भी मैंने एक....जिसका लाल इस लाल से कहीं अधिक बड़ा हुआ होगा।"

× × ×

"दम लगै, कर्म जगै, तेरी दुआ शामिल हो, औघड़ बाबा की दुहाई, कीनाराम बाबा को चुटकी भर आटा चाहता औघड़-नाथ।" कहता हुआ एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में मसानघाट की मानव खोपड़ी लिए हुए एक औघड़बाबा गले में रुद्राक्ष डाले सन्ध्या समय कानपुर की छोटी-छोटी गलियों में भिक्षा माँग रहा था।

एकाएक उसकी जोर की आवाज वहाँ भी सुन पड़ी, जहाँ तिल्लो अपने शरद कुमार को बैठी हुई बहला रही थी।

सुनते ही वह चौंक पड़ी और हृदय की विह्वलता न रोक सकी। तत्क्षण ही कोठी के नीचे उतर आई।

दरवाजा खोलते ही उसने देखा—सामने तीव्र स्वर से आवाज देने वाला वही औघड़बाबा खड़ा था।

"बेटी, तुम्हारा भला हो। औघड़ बाबा दुआ देता है...." दरवाजा खुलते ही उसने कहा।

बाबा की बातों से उसने महान् आश्चर्य हुआ, किन्तु उसने कहा—"बाबा! आप तो प्रारब्ध की बातें भी जानते होंगे। जरा मेरे बबुआ के विषय में बताइये नऽ!"

एकाएक औघड़ के मुख से निकल पड़ा—"हाँ हाँ....बेटी! लाओ उसे, कहाँ है वह?"

'यहीं है बाबा!" कहते हुए तिल्लो ने शरद का मुँह खोल दिया। उस स्वाभाविक माधुर्य को देखते ही वह मुग्ध हो गया। तत्क्षण उसकी भृकुटी चढ़ गई। न जाने क्या सोचने लगा वह!

"क्या सोच रहे हैं बाबाजी!" न जाने किस भावावेश में तिल्लो के मुखारबिन्द से निकल गया।

"बेटी शान्त रहो! मैं इस बच्चे की किस्मत पढ़ रहा हूँ।" एकाएक औघड़ बोला—"तुम्हारा लाल तो बड़ा भाग्यशाली है बेटी! किन्तु....युवावस्था आते ही यह पूर्ण भावुक हो जायगा। छोटी-छोटी बातों को गवेषणापूर्ण दृष्टि से देखेगा। सदैव दीन-दुखियों का भला करेगा। उसी भावुकता के वशीभूत हो इसे उन्माद-सा हो जायेगा और....उसी....उसी...."

एकाएक घबड़ा गया औघड़ बाबा।

"क्या है बाबा! आप घबड़ा क्यों गये?"

अचानक तिल्लो के मुँह से निकल पड़ा।

"कुछ नहीं बेटी! इसकी कर्म रेखा आगे बड़ी भयंकर है।" औघड़ ने कहा—"किन्तु मैं तो बतलाऊँगा ही। उस समय उसी उन्माद के वशीभूत हो यह अपना गोत्रवध करने पर तत्पर हो जायगा किन्तु कर न सकेगा और तत्क्षण पूर्ण पागल हो जायगा।

....फिर...इसे कोई शक्ति नहीं छुड़ा सकती और...."

"चुप रहिये। चुप....रहिए बाबाजी! मैं नहीं सुनना चाहती इस भयंकर कालिमामय भविष्य को!" उसने कहा।

उसने दाँतों तले अँगुली दबा ली। जी में आया बाबा को कुछ कह दे, पर न जाने क्यों वह शान्त हो गई। सोचकर, शायद ऐसी ही होगी कर्म रेखा, तो क्या करे औघड़ बाबा।

उसका क्या दोष। जो अनुभव हुआ उसे बता दिया।

ठीक उसी समय पतिदेव मदन दूर से आता हुआ दीख पड़ा। वह चुपचाप आँगन में चली गई।

औघड़ बाबा अब भी द्वार पर खड़ा दुआ दे रहा था।

● ●

दीनानाथ का साथ छूटते ही जीवन बिलकुल घबड़ा गया और बिलख-बिलख कर रोने लगा। तृषित चातक की भाँति उसका हृदय व्याकुल होने लगा, किन्तु दीनानाथ उसे न मिला, न मिला। जिधर जाता उधर ही निराशा।

खोजते-खोजते वह पागल-सा हो गया। तत्क्षण उसकी बुद्धि चकरा गई किन्तु दीनानाथ उसे न मिला।

"पिताजी! मेरे पिताजी...." कहते ही कहते वह भीड़ से सुदूर निकल गया। उस समय तनिक भी होश न था उसे, कि वह कहाँ जा रहा है। जिधर पैर उठ गये, उधर ही बढ़ गया।

वह भूख और प्यास भूल गया।

धीरे-धीरे प्रायः सन्ध्या-काल हो गया। सूर्यदेव विश्राम हेतु पश्चिम की ओर पहाड़ों की ओट होने लगे। यावत् संसार अपनी

कार्य प्रणाली से निवृत्त हो घर की ओर लौट रहा था। किन्तु बदनसीब, बेचारा जीवन, उसे कहाँ शान्ति थी। उसकी शान्ति दैव ने जन्म दिवस से पहले ही छीन ली थी और काल-यापन हेतु दुखद जीवन उत्पन्न किया था।

× × ×

गाँव से बाहर एक सरोवर बना हुआ था, जिसके किनारे स्थित वृक्ष पर अपने-अपने बसेरे को लौटी हुई पक्षियाँ गुंजार कर रही थीं। सूर्य डूब रहा था। उसकी अन्तिम किरणें मायूस-सी दुनिया को देख रही थीं।

ठीक उसी समय बेचारा जीवन सरोवर के पास पहुँचा। सरोवर के शीतल जल से तैर कर आती ठण्डी हवा के स्पर्श से उसकी व्याकुलता दूर हो गई। क्षणमात्र को वह ठिठक गया। लगातार शीतलता के स्पर्श से उसकी चैतन्यता जागृत हो गई। उसने देखा, जल से पूर्ण सरोवर लहरा रहा है। देखते ही उसकी तृष्णा प्रखर हो गई। तत्क्षण सरोवर के कूल पर पहुँच गया।

छोर पर सीढ़ियों के सहारे बैठ, पानी में पैर लटका, उन्हें मल-मलकर खूब धोया, पुन: पानी पीया, खूब जी भरकर। किन्तु फिर भी उसकी क्षुधा शान्त नहीं हुई। क्या खाय, पास तो कुछ था नहीं। क्षुधा किसी प्रकार शान्त होती नहीं थी।

क्षणमात्र को उसकी बुद्धि चकरा गई। क्या करे? कहाँ जाय? किससे माँगे? वहाँ कौन बैठा है उसे देने वाला? उसी कूल पर बैठा हुआ वह बेचारा तन्मयतापूर्वक सोच रहा था।

उसी तन्मयता में लीन अनायास उसके मुँह से झीनी-झीनी स्वर लहरी निकलने लगी....

"जिन राम के नाम सुधार लियो ...."

उस मीठी स्वर लहरी से वह स्थल मुखरित होने लगा। सरोवर जल की गति मन्द-सी पड़ने लगी। पास के वृक्षों पर बैठी हुई पक्षियाँ अपनी कलवर-ध्वनि भूल गयीं।

नियति-नीरवता चारों तरफ व्याप्त होने लगी।

वह अभागा गाते-गाते उसी में उन्मत्त-सा हो गया। अपनी भूख और प्यास भूल गया। रागिनी की धुन में एक शराबी-सा वह झूमने लगा।

× × ×

वैभवशाली 'वीरन' की आलीशान अट्टालिका से कुछ ही दूर पर इन्द्रा की सत्तामयी धारा अविरल गति से पश्चिम दिशा से पूर्व की ओर बहती थी। उसी इन्द्रा के किनारे नित्य प्रति न जाने कितनी नव-युवतियाँ अपनी सहेलियों सहित आकर अपनी-अपनी रति-विलास गाथा कह-कहकर जी को हल्का करती थीं। न जाने कितने सहृदय नवयुवक यौवनावस्था के प्रथम सोपान पर आरूढ़ होने आ-आ अपने साथियों से हृदय की वैकल्यता व्यक्त करते और उसी धुन में विभोर होते थे।

किनारे मैदान-सा बन गया था, जिसके मध्यस्थ भाग में एक विशालकाय वटवृक्ष स्थित था। वटवृक्ष की शाखायें यावत् मैदान को पूर्णरूप से आच्छादित किए रहती थीं। मोटी-मोटी शाखाओं से बरोंह निकल-निकल कर जड़ के आसपास मैदान में धंस गई थी और उसके तने के पास एक शिवाला-सा बना दिया था। उसी शिवाले के पास नित्यशः आस-पास के दो-चार गाँवों के बालक (जिनमें अल्प-वयस्क लड़कियाँ भी रहती थीं) नाना

प्रकार के खिलवाड़ों द्वारा अपना मनोरंजन करते थे।

× × ×

दुनियां उन्हें कंगाल कहती है और हेय सामग्री समझती है। उन्हें पैरों से ठुकराती है। उनके स्पर्श-मात्र से घृणा करती है। दो चुटकी के बदले उन्हें सहस्त्रों गालियां देती है और न जाने कितने व्यङ्गों का निशाना बनाती है। वे ही कङ्गाल जिन्हें नींद भर सोना, पेट भर भोजन मिलना दुरूह-सा रहता है। कभी-कभी रूखे-सूखे और कभी-कभी फाकेकशी पर ही निर्जन गांव में किसी भांति जीवन व्यतीत करते हैं। उनके मुख से प्रत्येक समय एक प्रकार की भयानक निराशा और वस्त्रों से दैन्यता निखरती रहती है। उनका यावत् जीवन भंवर में पड़ी हुई नाव की भांति डगमगाता रहता है....फिर भी वे जो कुछ मिल जाता है उसी पर सन्तोष पर जीवन व्यतीत करते हैं। संसार में ऐसे प्राणियों को लोग कंगाल कहते हैं। वह अभागा ऐसी ही गणना में गिने जाने योग्य था, जो इधर कुछ दिनों से इन्द्रातीर पर शिवाले में आकर रहने लगा था।

× × ×

उस मैदान की स्थिति इतनी अच्छी थी कि लोग दिन का अधिकांश समय बटछाया में ही व्यतीत करते थे। सुबह से लेकर अस्तप्रायः सूर्य तक स्नान हेतु आने-जाने वाले लोगों का तांता लगा रहता था। उन्हीं आने-जाने वाले व्यक्तियों से उस अभागे को कुछ मिल जाता था। वही भोजन वह करता और इन्द्रा की मीठी जलधार से अपनी पिपासा शान्त करता था।

उस कँगले की विचित्र दशा थी। भोजन मिलता या न मिलता, फिर भी वह न जाने क्यों बेफिक्र रहता।

कभी-कभी वह तमाम दिन सोया ही रहता। लोग आते, उसे बुलाते....किन्तु वह न उठता। वे लाई हुई वस्तु उसके पास रखकर चले जाते। कभी धुन सवार होती उसे तो गाने लगता। उसके सुकोमल कण्ठ से निकली धुन सुन पाषाण हृदय भी विमुग्ध हो जाता। रास्ते में जाता हुआ व्यक्ति ठिठक जाता और सुरीली रागिनी के वशीभूत हो उसके पास चला जाता। सुनते ही हृदय में एक प्रकार की असीम ममता जागृत हो जाती।

जिसके जी में जो आता, निकाल कर उसके पास फेंक देता।

इधर बालकों की क्रीड़ा में उस कँगले के आ जाने से एक प्रकार की नवीनता आ गई थी। वे अबोध बालक क्या जाने, यह कैसा प्राणी है? उन्होंने तो उसे अपनी क्रीड़ा का साधन बना लिया। जब कभी वे आते, उसके फटे कपड़े, सिर के बड़े-बड़े बाल देख....उसे पागल समझते और....पागल....पागल....कहकर उसे खूब चिढ़ाते। उस पर कंकड़ों की बौछार करते। जब वह गिड़गिड़ाता तो वे खूब खिलखिला कर हँसते। असहाय कँगला अवाक् हो जाता उन बालकों की धुन देखकर।

तात्पर्य यह है कि उसका जीवन कितना ही डगमगाता—फिर भी वह शांत रहता, न जाने क्यों?

× × ×

सन्ध्या समय दस-पन्द्रह लड़के आँख-मिचौनी खेलने हेतु उसी वट छाया में आये। उन्होंने देखा जहाँ वे अन्य दिन अपना 'पाला' बनाते थे उसी स्थान पर वह कँगला खूब गाढ़ी निद्रा में

पड़ा सो रहा है।

लड़को ने उसे सोया देख समझा वह उन लोगों का खेल बिगाड़ने ही के लिए वहां आकर सोया है। तत्क्षण उनके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला भभक उठी। वे अपने कौतूहल में विघ्न देख तिलमि ।। गये, लगे उसे जगाने।

उन्होंने मिलकर एक स्वर से खूब जोर से उसके इर्द-गिर्द शोर किया, वह न जाग सका।

बालक समुदाय को बड़ा ही बुरा लगा।

"हूँ, यह पगला तो अब भी नहीं जागा, अब क्या करना चाहिए? बिना इसे जगाये हम लोगों का खेल ही कैसे होगा?"

एक बालक ने सबों को सुनाकर कहा।

"अरे यार!... तू बड़ा खराब है। जो सोया हो उसे जगाने से क्या फायदा। चलो हम लोग दूसरी जगह चलकर अपना 'पाला' बनावें।" दूसरे ने कहा।

"नहीं... नहीं... ऐसा नहीं होगा, जो यह कहा है वही होगा। इसे जगाओ, यहीं हमारा पाला बनेगा।" तीसरे ने पहले का समर्थन करते हुए कहा।

"देख नहीं रहे हो, कैसा बहाना करके सोया है। पर यह सोया नहीं हैं। हटो तुम लोग, मैं गाऊंगा इसे....अकेले....हाँ बिलकुल अकेले।" तीसरे-चौथे ने कहा। चौथा तत्क्षण उसके पास पहुँच हाथ पकड़कर उसको उठाया। किन्तु वह तब भी न उठा—"बड़ा हरामी है...." कहते हुए उसका हाथ छोड़ दिया।

अभी वह पूर्ण रुप से उसका हाथ छोड़े भी न था कि एक लड़के ने एक पतली छड़ी से जो उसके हाथ में थी, कसकर उस कंगले के मस्तक पर मार दी।

एकाएक चोट लगने से वह कँगला हड़बड़ाकर उठ बैठा ।

उसे उठते देख उसने कहा—"देख, इसको जगाने की यह तरकीब है । क्यों आया ख्याल में, पर तू क्या समझेगा ? तू तो बुद्धू है बुद्धू ।"

आँख खोलते ही उसने देखा, चारों ओर यमदूत जैसे लड़के घेरे खड़े हैं । देखते ही वह काँप गया । वास्तव में वह लड़कों से उतना ही डरता था जितना लड़के उससे ।

घेरे हुए लड़कों से उसने कुछ कहना चाहा किन्तु उसके पहले ही सब लड़के खिलखिला कर हँस पड़े ।

"तुम अपना एक गाना सुनाओ....हम लोग सुनकर चले जायेंगे तो तुम खूब सोना...." एक ने सब लड़कों को चुप कराते हुए कहा ।

"मैं....मैं....नहीं गाऊँगा....तुम सब भाग जाओ...मुझे सोने दो...'' गिड़गिड़ा कर पगले ने कहा

"अगर नहीं गायेगा तो इसी से मरम्मत होगी ।" छड़ीवाले लड़के ने छड़ी हिलाकर कहा—"क्यों आया ख्याल में ।"

आखिर बालक ही तो, अड़ गये अपनी जिद पर....तपाक से एक उसके पास पहुँचा और बोला—"नहीं गाओगे....गाओ.... अच्छा नहीं गाता है....ले नहीं गाने की सजा...."

वह उसे फटाफट पीटने लगा । संयोग से एक चोट ऐसी लगी कि उसका मस्तक खुल गया । एकाएक खून की धार निकलने लगी । किन्तु बालक तनिक भी भयभीत न हुए ।

गहरी चोट लगने से आजिज हो वह कँगला उठ कर बालकों पर पत्थर फेंकता हुआ एक ओर भागा ।

"पकड़ो....पकड़ो पगला भागता है ...पगला भागता है...."

कहते हुए सब बालक ताली पीटते, खिलखिला कर हँसते हुए उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े।

कमलिनी बल्लभ उस समय दुनिया से परे हो रहे थे।

× × ×

भूतल पर स्थित प्रत्येक प्राणी चाहे वह बालक हो अथवा युवा सौन्दर्य को हृदय से चाहता है। रूप पर अपने-आपको भूलकर सभी मुग्ध होते हैं। किन्तु एक समय में मुग्ध भी नहीं होते। यह नहीं बतलाया जा सकता कि कौन किस व्यक्ति पर....कब.... कैसे मुग्ध हुआ। पर मुग्ध होते हैं सभी, यह निर्विवाद है। एक सौन्दर्य-निधि देखकर तो दूसरा कुरूप पर ही। पहला पिछले को देखकर दो गाल हँस लेता है... किन्तु पिछला पहले को देखकर नहीं। क्योंकि वह स्वयं अनुभव करता है कि पहले का प्यार सुन्दर पर है और उसकी तुलना में हेय है। यह बात भी उसे कुछ काल बाद रिमार्क होती है। इसी थोड़ी-सी बात को न जाने कितने व्यक्ति...मरना... कहते हैं, न जाने कितने डूबना।

उस चाहना में भी एक बात उल्लेखनीय है। वह यह कि कोई किसी को पहली ही नजर में देख, हृदय से प्यार करने लगता है...कोई किसी को दस दिन बाद।

ऐसा क्यों होता है? यह प्रश्न जरा गम्भीर है। इसका कोई उत्तर स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर जहाँ तक मेरा अनुभव या विचार है कि ऐसा होने का मुख्य कारण है पूर्व जन्म का संसर्ग। जिस प्राणी से किञ्चित मेल रहता है, चाहे वह किसी भी योनि में रहा हो। उसी से इस मनुष्य योनि में पहली ही नजर में प्रेमांकुर उत्पन्न हो जाता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यही बात चित्रा और जीवन के विषय में प्रतीत होती थी। चित्रा! अब निरी बालिका नहीं रह गई थी। समय चक्र ने उसमें अनेक परिवर्तन कर दिए थे। वह यौवन सोपान की पहली कतार पर आरूढ़ हो चुकी थी। उसकी आँखें, नैन, रूप में परिवर्तित हो गई थीं।

× × ×

इन्द्रादूकुल स्थित बटवृक्ष के नीचे उस अभागे कंगले को जिस समय चित्रा ने पहली बार देखा, उसी समय से उसके दिल में उस कङ्काल के प्रति उदारता के भाव फूट पड़ने लगे। समवेदना से द्रवीभूत होकर वह सोचने लगी—ओफ हो! दुनिया में ऐसे व्यक्ति भी पड़े हैं जिसके साथ दैव ने गहरा मजाक किया है।

दैव ने फूल तो इतना मनमोहक उत्पन्न किया है, किन्तु उसके योग्य उचित टहनी भी न दे सका। न जाने कौन-सा कौतूहल निहित कर रखा है उसमें।

क्या इसे क्षुधा न दुखित करती होगी? जरूर विकल करती होगी। संसार में कौन ऐसा है जिसे क्षुधा न सता सके। पर हाय, यह क्या खाता होगा? कौन इसका है जो पेट भर भोजन देता होगा? फिर इतनी असह्य पीड़ा बर्दाश्त करने पर भी यह अभागा कङ्काल! अहा कितनी सुन्दर हैं इसकी आँखें! कितनी भोली-भोली प्रतीत हो, दया की भीख माँग रही हैं। इसका गोलाकार चेहरा कितना अच्छा लग रहा है। हे दैव, तेरा नाश हो! तूने कितनी गहरी भूल की है। रूप इतना सुन्दर बनाते हुए भी तुने इसकी क्षुधा ज्वाला निवारण का कोई उचित मार्ग नहीं स्थापित किया। यदि तुझे ऐसा ही करना था तो तूने ऐसे

व्यक्तियों का निर्माण ही क्यों किया।

न जाने कितने समय तक खोयी चित्रा ध्यान में लीन रहती।

× × ×

अनायास एक दिन चित्रा अपनी हृदय लहरी का उद्वेग न रोक सकी। उदारता से पूर्ण हो वह उस अभागे कंगाल के पास चली गई। रह-रह कर उसके हृदय में कंगाल के जीवन की गाथा सुनने की भावना जोर पकड़ रही थी।

वह अभागा कंगाल इस समय भी वट वृक्ष के नीचे सिर झुकाये न जाने क्या सोच रहा था। उसकी हथेलियाँ आसमान की ओर देख रही थीं।

खुले हुए हाथों पर चमकती हुई एक इकन्नी आ गई। दिवाकर की किरणें उस पर सीधी पड़ रही थीं। इसी कारण और दर्प से देदीप्यमान प्रतीत होने लगी वह इकन्नी। देखते ही उसकी आँखें कृतज्ञता से चौंधिया गईं, छलछला गईं।

उसने देखा—

एक षोडस वर्षीया बाला सामने खड़ी हुई नखों से जमीन खुरच रही थी। उसके कोमल चांद से चमकते हुए मुखड़े पर विषाद की छाया न जाने क्यों घनीभूत हो रही थी।

"देव तुम्हारा भला करे....मुझे बड़ी भूख लगी थी। अब भली प्रकार क्षुधा शान्त कर सकूँगा। मेरे लिए यही एक इकन्नी काफी है।" कंगाल बालक ने कहा और टकटकी लगाकर चित्रा की ओर देखने लगा।

लगातार अपनी ओर उसे देखते देख न जाने क्यों वह झेंप-सी गई, तत्क्षण पूछी—"तुम्हारा नाम क्या है?"

चित्रा अपने हृदय में सोचती—यदि यह सदैव अपने पास रहे तो कितना अच्छा हो। सतत विचार दृढ़ होने पर निश्चय कर लिया किसी-न-किसी प्रकार इसे अवश्य ही अपने नेत्रों के समक्ष रखेगी।

× × ×

तब से उसका नित्य का नियम बन गया। वह जीवन के पास जाती, उससे बातें करती और क्षुधा शान्ति के लिए—

धीरे-धीरे चित्रा के हृदय में जीवन के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गई। यह एक नवीन अंकुर उदित हुआ था जो शनैः शनैः हृदयोद्यान में प्रस्फुटित होने लगा।

× × ×

उन लड़कों की अनायास मार से जीवन को गहरी चोट आ गई। देखते ही चित्रा दर्द से कराह उठी। वह भागते हुए जीवन के पीछे दौड़ पड़ी।

घर में प्रविष्ट होते ही उसने कहा—"माँ....माँ....देखो.... उस पगले को मार दिया....माँ....देखो....देखो....वह आ रहा है भागता हुआ....उसका मस्तक खुल गया है। माँ उसे बुलाओ... उसे बुलाओ माँ नहीं वह...." हाँफते हुए उसने कहा।

पास वाले कमरे में वीरन बैठा हुआ न जाने क्या कर रहा था। ध्यान में लीन बेटी की अधूरी ही बात सुन सका वह और सोचा—'मेरी बेटी को किसी ने मार दिया है।' तत्क्षण उसकी आँखें सुर्ख हो गईं और वहीं से पूछा—"किसने मारा।"

"....के लड़के ने।" उसने कहा।

क्रोधावेश में वीरन बाहर निकल आया। देखा, लड़का सामने ही से गुजर रहा था। उसने कूदकर पकड़ लिया उसे और कहा—"क्यों मारा....तूने उसे क्यों मारा।"

चट....चट....चट तीन-चार तमाचे उसके गाल पर पड़े।

वह फूट-फूटकर रोने लगा।

चट....चट शब्द को सुन वह बाहर दौड़ आई।

"तुझे कहाँ चोट लगी है री....क्यों झूठ ही माँ से कह रही थी।" वीरन ने चित्रा को देखते ही पूछा।

चित्रा अब भी हाँफ रही थी, बोली—"मुझे नहीं....मुझे नहीं मारा है बाबूजी!....उसे....उस कंगले को मारा है जो वृक्ष के नीचे रहता है।"

वीरन क्षणमात्र की अपनी नासमझी पर झेंप गया। तत्क्षण बोला—"उसे ही, उसे ही इसने क्यों मारा? वह इसका क्या नुकसान करता है। कहाँ है वह बेटी!"

"बाबूजी, बाबूजी....वह इधर ही गया है।"

"जाओ उसे खोज लाओ?"

न जाने किस भावावेश में कह दिया वीरन ने।

चित्रा हाँफती हुई दौड़ पड़ी उसे खोजने।

• •

कोमल उँगलियों के स्पर्श से बदन में सनसनी-सी छा गई। उसके जीवन ने मानो पहली ही बार अँगड़ाई ली। उसने आँखें खोलकर देखा... देखते ही सन्न हो गया।

"हैं मैं कहाँ हूँ? कौन मुझे यहाँ लाया?"

धीरे-धीरे उसे सब बातें याद होने लगीं।

एकाएक उसकी काया कांप गई।

"ठण्ड ज्यादा लग रही है क्या? दरवाजा बन्द कर दूं।" सिरहाने बैठी हुई चित्रा ने पूछा।

इस बार उसने पूर्ण रूप से आँखें खोलकर देखा। अनायास उसके मुँह से निकल गया—"चित्रा....तुम!...तुम?..."

"अभी तुम कमजोर हो, अधिक बोलने की कोशिश मत करो जीवन! जी अच्छा हो जाने पर सभी बातें मालूम हो जायेंगी।" चित्रा ने विनम्र शब्दों में कहा।

"नहीं चित्रा! मैं कमजोर नहीं हूं!..." एकाएक उसका हाथ बंधी हुई पट्टी पर पहुँच गया—"हैं, यह पट्टी कैसी? मुझे चोट लगी है क्या?"

"क्या भूल गए....तुम्हें उसने!"

"हाँ, अब याद आया...लेकिन चित्रा!"

उस समय चित्रा के हृदय में यह भावना तेजी से चक्कर काट रही थी कि कांपते हुए अधरोष्ठों को उठाकर देखे, उसके अन्तर्गत कौन-सी बातें उसने छुपा ली हैं।

लेकिन जीवन उसे क्या व्यक्त करे।

"तुम क्यों मेरे प्रति इतनी सदय हो? क्यों मेरे लिए इतनी अधिक परेशान हो? मेरी क्यों इतनी सेवा कर रही हो? बतला सकती हो?" जीवन ने पूछा।

सचमुच उस समय चित्रा उदारता से गली जा रही थी। उसने उसकी बातों का कुछ जवाब न दे केवल आँखें नीची कर ली।

"बोलो चित्रा!....मेरी बातों का जवाब तो दो।"

चित्रा शान्त....

"चित्रा ! तुम्हारे इतने बड़े अहसान का बदला मैं किस भाँति ...तुम मुझे अहसान के बोझ से न दबाओ....चित्रा ! चली जाओ...तुम यहाँ से चली जाओ....मुझे इसी भाँति मरने दो, मुझ जैसे व्यक्तियों का मर जाना ही उचित है।"

"तुम्हारा सोचना गलत है जीवन ! अब तुम्हारे दुर्दिन दूर चले गए।" उसने किंचित मुस्कराते हुए कहा।

"कैसे ?....क्या बतला सकती हो।"

"बेशक....मैंने बाबूजी से कहा था कि मुझे एक....आवश्यकता है। उसके स्थान पर मैंने तुम्हें बतलाया था। उन्होंने स्वीकार कर लिया है।"

"क्या यह सच है ?" उत्फुल्ल हो जीवन ने पूछा।

"नहीं तो क्या तुमसे झूठ कहूँगी !"

तनिक हँसते हुए कहा उसने।

बेचारे जीवन का दुर्बल हृदय इतनी बड़ी खुशी न सह सका और वह पुनः बेहोश हो गया।

धनवानों के यहाँ भी यदि वैभव की कमी हो तो वैभवशाली हों कैसे ? उनके प्रत्येक सामानों से, मकान की ईंटों से, दीवारों से, उनमें स्थित प्रत्येक वस्तुओं से ऐश्वर्य की लपलपाती आभा निशि-वासर उद्दीप्त होती रहती है। कंगाल जीवन की आँखें एकाएक इतनी ऐश्वर्यता देख चौंधिया जाती हैं। क्षणमात्र को वह सोचने लगता है....न जाने क्या-क्या ?

दैव ने अभागे जीवन की जीवन-नैया भँवर से बाहर सीधी धार पर कर दी थी। उसे बढ़िया से बढ़िया भोजन स्वच्छ से स्वच्छ वस्त्र मिलने लगे।

धीरे-धीरे वह अपने विगत इतिहास को भूल गया।

× × ×

"जीवन !"

"हाँ बाबूजी !"

"बगीचे से गुलाब का फूल लाओ, उसका एक सुन्दर हार बना लेना, मायामयी देवी की पूजा करना है। उनके मठ को प्राक्षालित कर देना। थोड़ी अग्नि भी रख देना।

× × ×

"जीवन !"

"हाँ बाबूजी !"

"जाओ....फौरन नाश्ते के लिए अन्दर से सामान ले आओ। हाँ दूध भी लेते आना। जरा उसे गर्म कर लेना। एक प्याली चाय भी लेते आना।"

× × ×

"जीवन !"

"हाँ बाबूजी !"

"जाओ चित्रा को स्कूल तक पहुँचा आओ, देखो ठिकाने से सड़क पर जाना। हाँ, आते समय....यह लो, एक-दो-तीन....१४... ठिकट एक आने वाले और चार जवाबी कार्ड भी लेते आना।"

× × ×

"जीवन !"

"हाँ बाबूजी !"

"इन चिट्ठियों को डाक में छोड़ देना और चौक चले जाना.... के यहाँ से....ब्याज के रुपये लेते आना, कहना आज सातवीं

तारीख है। रुपये सँभाल कर लाना...."

इसी भाँति बेचारे जीवन को जीवनडोर निशिवासर बाबूजी के कार्य से मशीन के पुर्जे की भाँति घूमती रहती। उसे तनिक विश्राम न मिलता था। फिर भी वह खुश रहता! शायद उसे इसी में महान् खुशी थी। इसीलिए कंगाल-जीवन सतत हँसता-सा प्रतीत होता था।

× × ×

उसके सीधे स्वभाव, आशातीत स्फूर्ति और कार्यसंलग्नता को देख वीरन सपत्नीक खुश रहता। इतना ही नहीं, उसकी सरल वाणी के कारण पास-पड़ोस के व्यक्ति भी उससे प्रसन्न रहते और उसे चाहते थे। थोड़े ही दिनों में जीवन सबकी आँखों का तारा बन गया।

× × ×

जीवन के हृदय को दैव ने पहले ही से भावुक बनाया था। चित्रा की असीम अनुकम्पा के कारण ही वह शिक्षित हो गया। सभ्य लोगों की निकटता के कारण सुमार्ग पर अग्रसर होता गया। अपने गुणों के ही कारण वह अनेकों प्रकार के भावों का अनुभव करने लगा। विद्याध्ययन से उसकी भावुकता द्विगुणित हो गई। अब वह छोटी-छोटी बातों को भावपूर्ण दृष्टि से देखने लगा और उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगा। उसे अब चाँद में नवीन सुन्दरता और सौन्दर्य में नवीन आभा झलकने लगी। साथ ही मानव योनि में जीवन सरसता, वाणी में नवीन मधुरता प्रतीत होने लगी।

उसकी अवस्था अब बचपन को लाँघ, यौवन द्वार पर पहुँच गई थी। उसमें देव ने पहले से ही एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति नियत कर दी थी। उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रत्येक मानव को कदम रखते ही होने लगता है।

अहा !....युवावस्था भी देव ने क्या बनाई है कि....फिर.... वास्तव में इसमें अमित शक्ति उसने संचय की है। यदि मानव इस शक्ति का उपयोग करे तो कहना ही क्या है ? इसी अमित शक्ति पर मुग्ध हो सुर, मुनि सभी मानव योनि पाने के लिए सतत याचना करते है तथा पिंजरे के पक्षी की भाँति फड़फड़ाते रहते हैं। पर बड़े शर्म की बात है....उसी अमित शक्ति का दुरुपयोग कर यौवनावस्था में प्राप्त होने वाली वासना की मदान्धता में उन्मुक्त हो भारत के न जाने कितने लाल, जिन पर भारत की उन्नति का भविष्य निर्भर है तथा जो भारत के भावी कर्णधार हैं, कराल काल के ग्रास हो रहे हैं। ऐसा क्यों ? शायद वे समझते है, दैव ने युवावस्था इसलिए बनाई है। उनके मस्तिष्क में तेजी से वासना की बातें घुस जाती हैं। जिनके कारण वे समूल सड़ रहे है। आजन्म अपने जीवन को कलंकित कर रहें हैं। अपने पूर्वजों की कीर्ति पताका बर्बाद कर रहे हैं।

नौजावनों चेतो! तुम्हारे चेते बिना माँ का उद्धार होना कठिन है। देखो....भारत की गिरती दशा को देखो! विदेशियों के कारागार में विवश भारत माँ की आँखों से रहम की बूंदें निकल रही हैं। उसके आँचल का तार-तार...वह चिल्ला रही है, पर तुम उसकी पुकार नहीं सुन रहे हो। कान के बहरे हो रहे हो और आँखों के अन्धे ? उसकी पुकार पर ध्यान न दे तुम स्वयं को पापाचार और व्यभिचार में डुबो रहे हो।

सुरा सेवन कर, रमणियों के सहवास में उन्मुख हो, भयंकर पाप की दशा को प्राप्त हो, चारपाई पर पड़े छटपटा रहे हो। ओफ ! अब भी समय शेष है, सोच लो... आँखें खोलकर सोच लो। मैदाने जंग में कूद पड़ो। मारो....मारो !....

विजय प्राप्त कर देश को स्वतन्त्र करो या स्वयं बलिदान हो जाओ। दोनों भाँति जीवन धन्य है।

\+ + +

इन्द्रा की चञ्चल लहरें उसके पैरों को धो रही थीं। किनारे पर बैठा हुआ वह साबुन मल रहा था। लोल लहरों के हृदय पट पर दिवाकर की किरणें कल्लोल कर रहीं थी। एकाएक पत्ते खड़के, उसने पीछे पलट कर देखा।

चबूतरे पर लवंगलता-सी सिमटी हुई एक सर्वांग सुन्दरी आ बैठी। उसके पार्श्व देश में एक नवयुवक साक्षात् अनंग-सा खड़ा मुस्कुरा रहा था ! जिसकी आँखों से एक प्रकार की विचित्र आभा देदीप्यमान हो रही थी। वह हाथों में एक जोड़ा तीतर लिए खड़ा था।

"शबनम !" नवयुवक ने पीछे से पुकारा।

उसने घूमकर देखा, तत्क्षण झेंप-सी गई वह और बोली —

"मेरे जिगर !"

एक हल्की-सी मुस्कुराहट दोनों के चेहरों पर कल्लोल करने लगी। क्षण मात्र को दोनों विभोर हो निश्चल भाव से खड़े रह गये।

"शबनम !

शबनम ने दृष्टि उठाई।

यह लो, मेरे तीतर की जोड़ी, पकड़े रहो इसे।"

"क्यों ?" शबनम ने नेत्र नचाते हुए कहा।

"इसलिए कि मैं दूसरी जोड़ी झुरमुट के उस पार से पकड़ लाऊँ।" तीतर हाथ में देते हुए जिगर ने कहा।

शबनम ने तीतर हाथ में ले लिया। जिगर तत्क्षण दौड़कर झुरमुट के पास चला गया। शबनम कौतूहल में भरी अपने जिगर की कार्य-प्रणाली देखने लगी। क्षणमात्र को भूल गई वह कि उसके हाथों में तीतर की जोड़ी है।

मौका पा "फुर्र-फुर" शब्दों के साथ पर फड़फड़ाता हुआ एक तीतर उड़ गया। ठीक उसी समय हाथ में एक तीतर लिए हुए आ गया जिगर। उसके कपोलों पर हार्दिक आनन्द कल्लोल कर रहा था।

"हैं!....तुमने तो गजब कर दिया शबनम! एक तीतर क्या हुआ ?" ताज्जुब से जिगर ने कहा। उसने आते ही शबनम के एक रिक्त हाथ को देख लिया था।

शबनम मानो स्वप्न से जाग गई। रिक्त हाथ को देख चौंक पड़ी। उसे क्या मालूम था कि तीतर हाथ में है या नहीं। वह तो जिगर की कार्य प्रणाली को देख रही थी।

"वह उड़ गया जिगर...." अपने में सिमटते हुए शबनम ने कहा।

"कैसे उड़ गया...."

"देखो इस तरह...." दूसरा तीतर छोड़ते हुए बोली शबनम! साथ ही उसके मदभरे नैन शोखी से नाच गए। एक भावपूर्ण गम्भीर कटाक्ष किया उसने।

"अब समझा...माशूकों की एक अनोखी अदा है यह।" एक

हल्की-सी चपत उसके गुलाबी गालों पर लगाते हुए जिगर ने कहा—"यह है उस अदा की सजा, आया समझ में शबनम।"

"ओफ..." अदा से शबनम चीखी, उसने अपने अङ्कपाश में जिगर को पकड़ लिया। इस आनन्द में वह विभोर-सी हो गई।

जिगर की मुठ्ठी छूट गई।

पक्षी कब परतन्त्रता स्वीकार कर सकता था।

फुर्र से उड़ गया वह तित्तर सी।

जिगर ने तत्क्षण शबनम के अधरोष्ठ चूम लिए।

यह था इन्द्रा तीर का आह्लादकारी, हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करने वाला दृश्य जिसे स्नान करते समय जीवन ने देखा था।

इतने बड़े उल्लास को देख वह प्रफुल्लित हो गया। उसके जीवन ने प्रथम बार अँगड़ाई ली और वह मचलता हुआ 'वीरन भवन' चला आया।

× × ×

अस्तप्रायः सूर्य की किरणें पृथ्वी की समस्त वस्तुओं को स्वर्णमयी बना रही थीं।

अपने रीडिंग रूप में बैठी हुई चित्रा चिकने कपोलों पर हाथ रखे न जाने क्या-क्या सोच रही थी। उसके चेहरे पर विषाद की छाया पूर्णरूप से व्याप्त हो गई थी। वह सोचने में तन्मय थी। दीन-दुनिया की सुध न थी उसे। तभी कोई दरवाजा खोलकर भीतर आया। एकाएक किसी अज्ञात भाव से चौंक उठी वह। दृष्टि उठाकर देखा उसने—

जीवन सामने खड़ा मुस्कुरा रहा था।

कई मिनट पहले से वह दरवाजे के पास खड़ा-खड़ा उसका

मुख-मण्डल देख रहा था। मन ही मन उसके कष्ट के कारण का अनुमान लगा रहा था। आज के पहले उसने उसे ऐसी कभी नहीं देखा था।

"ओह! आज तो तुम बड़े प्रसन्न हो जीवन! क्या मैं इसका कारण समझ सकती हूँ?" देखते ही चित्रा ने पूछा।

"तुम इतनी चिन्तित क्यों हो चित्रा! क्या बताओगी?"

"नहीं, नहीं....कौन कहता है कि मैं चिन्तित हूँ। तुम्हें भ्रम हो रहा है।"

"नहीं चित्रा! मुझे भ्रम नहीं हो रहा है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ....पूर्ण चन्द्र को राहु ने ग्रस लिया है।"

"पहले तुम बताओ अपनी प्रसन्नता का कारण?"

"कुछ वैसी बात नहीं है चित्रा! न जाने क्यों हृदय उछल रहा है।"

"फिर भी कुछ तो कहो।"

जीवन हँसता ही रहा।

"कहो, कहो....चुप क्यों हो, न कहोगे....अच्छा जाओ, चले जाओ....मैं तुमसे नहीं बोलूंगी। तुम मुझसे पर्दा करते हो।"

"मैं तो स्वयं बतलाता हूँ सब मामला, इतनी जल्दी क्यों है?"

"तो फिर कहते क्यों नहीं....जानते नहीं, सुनने के लिए मेरे हृदय में तूफान उठ रहा है।"

एक हल्की मुस्कुराहट के साथ कहा उसने।

"कोई खास बात नहीं है चित्रा! इन्द्रा तीर की एक आह्लादकारी घटना है जिसे प्रत्यक्ष देखा हूँ।"

न जाने इन वाक्यों में क्या निहित था कि सुनते ही चित्रा का चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया। उसके इस प्रकार के बदलते

हुए भाव को जीवन ने पूर्ण रूप से परखा। जीवन अब वह असभ्य जीवन नहीं रह गया था। नियति ने उसे सभ्य, सुचतुर बना दिया था। उसने उसके पीलेपन का कारण समझा। जरूर इसमें कोई न कोई रहस्य है, किन्तु क्या है वह न जान सका।

"चित्रा! उस घटना को सोच-सोच मैं हँस रहा हूँ। किन्तु समालोचक दृष्टि से देखने पर उसकी कार्यप्रणाली पर मुझे महान अफसोस हो रहा है। वास्तव में सभी ऐसे कर्म को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।"

जीवन की बातें बिजली की भाँति उसके हृदय पर लगीं। वह अपने को संयत न रख सकी। अनायास बड़बड़ाने लगी।

"जीवन! मेरे अच्छे जीवन, मुझे क्षमा करना। तेरा सत्या-नाश हो! ओफ मैं तुझे नहीं जानती थी, तू इतना जघन्य है।"

"साफ-साफ तुम क्यों नहीं बतलाती चित्रा?" उसके भावा-वेश को रोकने के अभिप्राय से उसने कहा।

"अरे निष्ठुर, निर्मम....आलोक....तेरा....तूने सोचा था.... न जाने क्या-क्या। किन्तु तेरी चाल सफल न हो सकी।" इस भाँति वह बड़बड़ाती ही रह गई।

"जीवन!" ठीक उसी समय बाबूजी ने पुकारा। अभी,अभी कुछ सामान हाथ में लिए हुए वे शहर से लौटे थे।

"आया बाबूजी!" कहता हुआ वह कमरे से बाहर हो गया।

● ●

कमरे में तीव्र प्रकाश से जल रही बत्ती के आलोक से उसके लाल-लाल अधर आलोकित हो रहे थे। कुर्सी पर वह लवंगलता-सी

चमकीली, मदिरा सी मदमयी, चपल चित्र लिखित-सी, स्तम्भित सी बैठी हुई थी। उसके मादक नेत्रों से अरुणिमा छन-छनकर निकल रही थी। उसके ऊपर व्योम-मण्डल में आकाश शिशु हँस रहा था जिसके अन्तः प्रवेश के नीचे अनिन्द्य चित्रा मुस्कुरा रही थी। मन्द समीर इन्द्रा के धरातल को स्पर्श करता बह रहा था। उसके नेत्रों के समक्ष उसका प्रेम-पुजारी जीवन बैठा हुआ था। जिसके चेहरे पर हल्की मुस्कुराहट खेल रही थी। वे दोनों एक-टक एक दूसरे को देख रहे थे। यदि एक की भावना सुधारस पी रही थी तो दूसरे की परिचुम्बन शोभा।

"अहा, चाँदनी रात भी कितनी मादक होती है, देखती हो न चित्रा! इस आकाश शिशु की वाल्य-सुलभ क्रीड़ा को। इसके खेल से उद्भासित हो समस्त जगत् रजतमय हो कितना भला प्रतीत हो रहा है! अहा, मानव हृदय देखते ही पुलकित हो जाता है चित्रा! आकाश की ओर देखो। कितना आनन्दमय समय है।" प्रफुल्लित होते हुए जीवन ने कहा।

"और इस आनन्द के समय जब तुम मेरे इतने समीप हो, आनन्द और द्विगुणित हो उठा है। मेरे जीवन के सहारे!" उल्लसित भावना से कहा चित्रा ने।

"ऐसे आनन्द के समय में तुम मधुर स्वरलहरी सुनाने से इनकार कर रही हो। उसी स्वरलहरी को सुनाने से जिसका साक्षी यह जगत रहा है। जिसे तृषित हृदय पीते हुए भी पिपासित बना रहता है। जिसके सूत्र में सब कुछ आबद्ध रहता है। क्या इसीलिए कि तुम्हारी रागिनी मनमोहक, आह्लादकारी है।"

"नहीं, नहीं जीवन! तुम मुझे बनाने की कोशिश मत करो। मैं स्वयं पर अभिमान करने वाली नहीं हूं। मुझे अलापने में कुछ

भी उच्च नहीं है, लेकिन....''

लेकिन शब्द ने अत्यन्त आकर्षित कर लिया उसे। न जाने क्या भाव उत्पन्न हुआ उसके हृदय में कि विषाद की धुंधली छाया उसके रक्ताभ कपोलों पर घूमने लगी।

"लेकिन क्या चित्रा !....बोलो जल्द बोलो, चुप क्यों हो गई ?''

विचारावेश में उसके मुख से लेकिन का प्रयोग हो गया था पर वास्तव में कोई बात न थी।

एकाएक अपने को निरुत्तर समझ झेंप गई वह।

"बोलो चित्रा ! बोलो....चुप क्यों हो ?''

चित्रा शान्त रही।

"लेकिन के अन्दर तुमने कौन-सा रहस्य छिपा रखा है चित्रा ! ...बोलो नऽ ?''

"कुछ नहीं जीवन ! यों ही मुँह से निकल गया। तुम भी अजीब पागल हो, बाल की खाल निकालने लगे।''

"ऊँ हूँ....आज तक कभी ऐसा हुआ नहीं कि मनुष्य के मुख से कोई शब्द निकले और उसका कुछ अर्थ न हो।''

चित्रा विचित्र परिस्थिति में पड़ी सोचने लगी क्या जवाब दे।

"इस तरह क्यों चुप हो ? नहीं बतलाना है तो साफ-साफ क्यों नहीं कह देती ?'' जीवन ने कहा।

यदि वह सब कुछ कहेगी नहीं तो अनायास हृदय में एक दरार पड़ जायगी, सोचा उसने, तत्क्षण बोली—"यदि बाबूजी सुन लेंगे तो गुस्सा होंगे !....''

"बाबूजी गुस्सा होंगे !....'' सुनते ही उसके दिल पर एक गहरी ठेस लगी। बैठ गया उसका दिल—"बाबूजी हमारा-तुम्हारा साथ पढ़ना स्वीकार नहीं करते हैं क्या ?''

"तुम बात को समझे नहीं। हम तुम एक साथ हैं इसलिए नहीं गुस्सा होंगे। इसलिए कि गाने-बजाने में समय बर्बाद करती हूं और पढ़ती नहीं। क्या फायदा इतना रुपया खर्च करने से ?" चित्रा ने विचित्र पहेली के रूप में कहा।

"अच्छी बात है। पर इस समय बाबूजी तो हैं नहीं। वे अभी-अभी बाहर गये हैं।"

"ओह, पहले ही क्यों नहीं बतलाया तुमने। अब तो मैं स्वयं स्वच्छन्द रूप से गाऊँगी। पहले तुम गाओ।"

"नहीं, नहीं...गाओ...तुम्हीं गाओ। अच्छी बात है मिलाओ स्वर....मैं ही गाता हूं।"

उसने हारमोनियम उठा स्वर मिलाया। जीवन गाने लगा--

"गहरी नदिया नाव पुरानी....मैं...."

अहा! कितनी सुरीली, कितनी आह्लादकारनी थी उसकी मधुर रागिनी!

"इधर लाओ हारमोनियम.. अब तुम गाओ।"

"कांपते हैं प्राण, उर को... मैं तुम्हें।"

गाते ही गाते उन्मुक्त-सी हो गई वह। पुलकित हो गये उसके रोम-रोम! उधर जीवन का बुरा हाल था। स्वर के साथ-साथ वह स्वयं को भूल गया —

धन्य हो....धन्य हो...जड़ चेतन को कम्पित करने वाली संगीत देवी! मीठी-मीठी लहरी अब भी गूँज रही थीं।

× × ×

इधर बाबूजी में अनेकों परिवर्तन हो गये। वे बात-बात में चित्रा से चिढ़ जाते और झल्ला पड़ते। फलां काम नहीं किया....

क्यों नहीं किया....इत्यादि नाना प्रकार के प्रश्नों की झड़ी लगा देते। बेचारी चित्रा पर दैव-संयोग से इस बीच में ही वज्रपात हो गया। उसकी वात्सल्य रस की शुद्ध मूर्ति का परलोकवास भी अचानक हो गया। इसी कारण वह अधिक दुखित-सी रहने लगी थी।

इधर किसी न किसी दिन बाबूजी अनायास उसे दो-चार बातें कहते। किन्तु इसका वास्तविक कारण था, उन दोनों का बढ़ता हुआ प्रेम। जिसे शुद्ध हृदय चित्रा न समझ सकी और बाबूजी उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त भी नहीं कर सकते थे, न जाने क्यों?

इधर वे दोनों बाबूजी के बिगड़ने पर परस्पर अलग रहने की कोशिश करने लगे थे किन्तु असफलता को ही प्राप्त होते थे। सफलता सुदूर से खड़ी अँगूठा दिखा-दिखा मुस्कुरा जाती, दोनों को असफल होते देख। ऐसा क्यों होता था? पर हाय, उसमें उन दोनों का दोष हीं क्या था? कुछ भी नहीं।

नियति-चक्र ही ऐसा चल रहा था, वे लाचार थे।

हृदय-व्यथा से पीड़ित हो कभी-कभी चित्रा सोचती—ठीक है, उनकी ओर मेरा आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। आखिर वे हैं ही मेरे कौन? मेरे उनके सम्बन्ध ही क्या? पर ज्यों-ज्यों इस समस्या पर विचार करती, त्यों-त्यों वह अधिक उलझ जाती और उसका हृदय विचलित हो जाता। बढ़ते हुए तूफान को वह दबा न सकती थी।

अनायास हृदय पुकार उठता—"जीवन....जीवन!...."

"क्या है चित्रा है! क्या है!" तत्क्षण बोल देता जीवन! बस फिर उनकी हृदय कली खिल जाती, वे दोनों मुस्कुरा देते।

अन्य दिनों की भाँति आज भी चित्रा कमरे में बैठी हुई कुछ सोच रही थी। उसके मुख पर उदासीनता के भाव झलक रहे थे।

"जीवन!" ठीक उसी समय उसके हृदय ने पुकारा।

पुकारने के कुछ ही देर पहले एक पतिंगा बत्ती के सामने नृत्य करता हुआ आया। उसने प्रत्यक्ष देखा, तीन-चार चक्कर बड़ी तन्मयतापूर्वक उस पतिंगे ने किया। एक बार स्वयं वह बत्ती के गुल पर चला गया और तत्क्षण उसका निर्जीव शव अवनी-तल पर गिर गया। देखते ही उसका चेहरा धूमिल पड़ गया।

जीवन, शब्द जोर से अचानक जीवन की शून्य आत्मा में प्रविष्ठ हुआ। उसकी स्मृतियाँ मचलने लगीं और फौरन चित्रा के कमरे में पहुँच गया।

उसे देखते ही वह सन्न रह गया और पूछा—"ऐसा रूप बनाने का कारण?

"कोई उल्लेखनीय बात नहीं है जीवन! विचार कर रही हूँ मानव के अस्तित्व पर! ओह, यह जगत कितना नश्वर है! कितना भ्रमात्मक और क्षणिक। मानव जाति न तो इसकी राह को समझ पाती है और न इसके तत्व को सोच सकती है।"

"तुम्हारा सोचना ठीक है चित्रा! यह संसार नितांत भ्रमात्मक है। इसमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ और बड़ी-बड़ी रूढ़ियों का समावेश है। किन्तु भ्रमात्मक होते हुए भी इसका पथ सभी जानते। हैं फिर भी वे अज्ञानता के पथ पर चले जाते हैं। जानती हो इसका कारण?

मनुष्य को स्वयं पर गर्व रहता है। उसकी आन्तरिक भावना तृष्णा से परिपूर्ण रहती है। अपनी पिपासा को शान्त करने हेतु

वह बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है। घोर कठिनाइयाँ सहन करने पर भी अपनी उसी भावना को संसार क्षेत्र में जीवन-पर्यन्त एक आदर्श रूप देना चाहता है। यही कारण है—सुखमय अवस्था होते हुए भी वह दुखित रखता है। संसार उसे विशेष भ्रमपूर्ण लगता है। तृष्णा में पड़कर बड़े-बड़े ज्ञानी अपनी विद्वत्ता और ज्ञानराशि भूल जाते हैं। उसी भावना को स्थिर रूप देने में अपना जीवन होम कर देते हैं। मृत्यु उपस्थित देखकर भी प्राण काया को नहीं छोड़ना चाहता...."

"किन्तु मैं तो अपने को इससे परे समझती हूँ जीवन! मेरा यह दृढ़ विश्वास है, मनुष्य ज्ञानपूर्ण होते हुए भी केवल काल्पनिक सुखद भावनाओं के वशीभूत हो स्वयं को सर्वनाश के पथ पर आरूढ़ कर विनाश के समीप पहुँच जाता है। संभल गया तो संभल गया, नहीं तो एक मिनट बाद अपने को उसी गर्त में पाता है। वह ज्यों-ज्यों किसी वस्तु के समीप पहुँचता है त्यों-त्यों उसकी छाया दृष्टि-पथ से ओझल-सी प्रतीत होती है। वह जीवन बर्बाद करने पर भी सफलता को प्राप्त करना चाहता है...."

सुनते ही जीवन को एक ठेस-सी लगी। उसका माथा एकाएक चकरा गया। दोनों हाथों की ऊँगलियाँ कसकर भींच लीं उसने।

"तो क्या मनुष्य-जीवन निराशापूर्ण है? क्या राजा, क्या योगी, क्या गृहस्थ, सभी की कर्मरेखा एक-सी होती है। किसी के जीवन में सफलता का नाम नहीं। तनिक भी उसका प्रतिबिम्ब नहीं। केवल कल्पना ही का समुन्नत महल पावन जीवन तैयार करता है।"

"नहीं, नहीं, यह कौन कहता है जीवन!—सभी मनुष्यों की कर्मरेखा एक-सी रहती है, सभी एक ही दशा को प्राप्त होते हैं,

सभी के जीवन का अन्तिम परिणाम केवल निराशा ही होती है, ऐसा तो मैं नहीं कर रही हूं।"

"तो फिर ?..." बड़ी शीघ्रता से पूछा उसने।

"तुम मेरी बात को समझे नहीं,। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के हृदय में एक प्रकार की ऐसी भावना निहित रहती है और वह मौका पा वेग से चरितार्थ होने के लिए दौड़ पड़ती है। यदि उसके उबाल में मनुष्य बह गया तो बह गया। किन्तु जिसने उसे दबा लिया, उसका दमन कर लिया, वही मनस्वी के नाम से पुकारा जाता है। मनुष्य योनि पाने का वास्तविक बोध उसी को होता है। उसकी समता में समस्त जगत तुच्छ है। वे ही पुरुष मृत्यु प्राप्त करने पर भी संसार क्षेत्र में जीवित रहते हैं। किन्तु मनस्वी होना असम्भव है। मनुष्य-मात्र से चंचलता दूर हो जाय, यह असम्भव है। ज्वार-सी उठती हुई भावनाओं के सुखद महल, आन्तरिक अभिलाषा इत्यादि दूर हो जाय, यह कठिन है। बिना इसका दमन किए परम गति पाना दुर्लभ है।

यह सब बातें मनुष्य से दूर हो जायँ, इसमें हम लोगों का कोई वश नहीं है। क्योंकि उसकी शक्ति, हमारी शक्ति से अधिक है। फिर परतन्त्रता के कारण मजबूर हो यदि हम लोग बह जाँय.... जीवन बर्बाद करके....तो हमारा क्या अपराध ? फिर भी संसार, समाज में हमें ही अपराधी ठहरायेगा। हमें ही प्रायश्चित करने पर बाध्य करेगा। हमें ही नाना प्रकार की यातनायें सहन करनी पड़ेंगी। नट-मर्कट की भाँति मानव जीवन-ज्योति को घुमाने वाले दैव को कोई कुछ नहीं कहेगा। सूक्ष्म दृष्टि से यदि समाज, जाति, धर्म-विवेचना करे कि वास्तविक अपराधी कौन है, तो सम्भव है वह अपराधी मिल जाय।

समाज दण्ड न देगा न सही, उनके साथ निर्दोष बर्बाद होने वाले घुन को जान बच जायगी। किन्तु इसकी विवेचना करने वाला ही कौन है ? किसे जगत में इतनी फुर्सत है जो विवेचना करे ? किसे इतना समय है जो मानव-जाति की व्यथा को समझे, समाज के भयंकर कोप को सोचे, जगत् की पक्षपात-पूर्ण नीति को देखे, आडम्बरों की आत्मा को पहचाने, न्यायकर्ताओं के हृदय को देखे ? यही कारण है कि न जाने कितने लोग संसार की सभी बातों का उल्लंघन कर अपने जीवन का नवीन उद्देश्य बना, स्वयं अग्रसर होते हैं। हालांकि कि वे दुनिया के लिए हेय सामग्री बन जाते हैं। लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ईश्वर ऐसे व्यक्तियों का क्या करता है, यह कौन जाने ? पर वे स्वयं को सुखी अनुभव करते हैं।"

"चित्रा ! चित्रा ! तुम पर कोई दैवी शक्ति सवार हो गई है या स्वयं महामाया देवी की कृपा आ गई है, जो इतनी गहरी भाव पूर्ण बातें मेरे समक्ष उद्धृत कर रही हो। यह तुम्हारे दिमाग से निकली बातें हैं या जनून की !" आश्चर्यचकित हो जीवन ने पूछा।

"जो कुछ मैं कह रही हूं, वह ठीक है जीवन ! इसे व्यर्थ न समझना। ये बातें समाजवादियों को जला-जलाकर क्षार करने वाली हैं ! उल्फत न रक्खो हमसे मगर मुँह से बोलो।" कहते हुए उसने जीवन की एकाग्रता भंग की।

उस समय कमलिनी-वल्लभ मध्याह्नकाल में पहुँच विश्राम कर रहे थे। प्रायः लोगों की घड़ी की सूईयां छोटे-छोटे खानों को पारकर अपनी मंजिल की अधूरी कहानी तय कर चुकी थीं। किन्तु जीवन अपनी कोठरी में बैठा हुआ, एकाग्रचित्त हो न जाने क्या मनन कर रहा था ? शायद उसकी मंजिल अर्धरूप पर नहीं पहुँच

सकी थी।

एकाएक चित्रा की आवाज ने उसकी ध्यानतन्त्री भंग कर दी। उसने दृष्टि उठाकर अपनी कल्पना की रानी चित्रा को देखा।

"हैं, तुम....यहाँ? क्या पढ़ने नहीं गई?" जीवन ने पूछा।

"जी नहीं। आपको मालूम होना चाहिए, आज वह दिन है जिस दिन प्रायः सभी सरकारी काम बन्द रहते हैं।"

"धन्यवाद! मैं भूल गया था कि आज इतवार है। बैठ जाओ। यह लो कुर्सी।" बोला जीवन।

कहने को तो कह दिया उसने, पर उसकी अन्तरात्मा उस दिन की याद आ जाने से एकाएक काँपने लगी। दिल धड़कने लगा। यह सोचकर उसके चेहरे पर घबराहट आ गई कि यदि बाबूजी आ गये तो क्या होगा?

"मेरे आते ही तुम इतना घबड़ा क्यों गये, बोलो!"

"घबड़ा क्यों जाऊँ? तुम भी पगली ही हो...ऐसी बात ही कौन-सी है?"

कहने को तो उसने कह दिया—किन्तु दिल ही दिल में अपनी कायरता पर झेंप-सा गया।

"खैर, ईश्वर न करे कि तुम घबड़ा जाओ।" बोली चित्रा—"क्या मैं जान सकती हूँ किस पाठ का इतनी तन्मयतापूर्वक मनन हो रहा है?"

"हाँ, हाँ....शौक से....यह लो....देखो।" पुस्तक हाथ में देते हुए जीवन ने कहा।

वह पुस्तक हाथ में लेकर देखी, मुख-पृष्ठ पर ही लिखा था—"वाह रे प्रेम।"

अन्तिम पृष्ठ खोल पन्ने उलटने लगी। एकाएक उसकी दृष्टि

किसी पन्ने के मध्यस्थ भाग पर रुकी। वहीं अंगुली रख दिखाते हुए बोली—"यह देखो, क्या लिखा है? क्या भागीरथी की भांति, निर्मल मन्दाकिनी की भांति, पवित्र प्रेम ही ईश्वर का वास्तविक रूप है? क्या इसी प्रेम को पाना ही ईश्वर को पाना है? क्या वास्तविक प्रेम भविष्य में जीवन के सफलता की कुन्जी है?"

"जी! उसका लिखना वाकई ठीक है।" जीवन ने कहा।

"किन्तु मेरी समझ से यह एक निर्धारित सीमा है जीवन! अन्यथा कोई बात नहीं।"

"........"

"तो ऐसा क्यों लिखा गया, बोलो?...."

"यह अपनी-अपनी समझ है चित्रा! किसी की मनोवृत्ति प्रेम ही में सब कुछ समझती है, किसी का वैराग्य में...किन्तु...." एकाएक रुक गया वह।

"ठीक कहते हो तुम। लेकिन वास्तविक प्रेम तो ईश्वर को पाना है। यह बात शायद ठीक है, पर इसे पाना दुरूह है अभी।"

वह और न जाने क्या कहने जा रही थी कि बीच में ही जीवन टपक पड़ा—"क्या कहा, क्या वास्तविक प्रेम को पाना दुरूह है?"

"जी हां! अब आपकी समझ में आया है।" चित्रा ने कहा।

"कैसे दुरूह है? जल्द बताओ?"

"इसमें विचलित करने वाली मुख्य बात है, बलिदान और आत्म-समर्पण की। इसे पाने में जीवन की समस्त भावनायें त्यागनी पड़ती हैं। अरमानों की आहुति करनी पड़ती है। ऐसी हालत में जानते हो क्या होता है? जीवन एक टिमटिमाता दीपक बन जाता है। प्रत्येक समय क्षणिक वायु के झोंके से उसके बुझ जाने का भय रहता है। इस रहस्य को देख कर संसार चकरा जाता है। वह

कुछ भी न समझ अंधेरे में ही चल पड़ता है। लपलपाती प्रेम-ज्वाला की ओर तीव्र रूप से अग्रसर हो जाता है। धीरे-धीरे वह वहाँ पहुँच जाता है। धू-धू करते हुए अग्नि शिखर अविराम गति से जलते रहते हैं। उस ो ज्वाला को शीतल जलयुक्त सरोवर समझ कर उसकी यह भूल (क्षणमात्र में मैं भस्म हो जाऊँगा) बढ़ जाती है।"

एकाएक जीवन का चेहरा फक हो गया। वह टकटकी लगा उसका गौरांग मुख-मण्डल देखने लगा।

"क्या सचमुच यह अप्राप्य वस्तु है चित्रा!" अनायास उसके मुख से निकल पड़ा।

"बेशक!" गम्भीर भाव से कहा उसने—"किन्तु...."

किन्तु शब्द ने उसका ध्यान आकर्षित किया।

"किन्तु क्या चित्रा.. बोलो ?" उसने कहा।

"किन्तु कर्म-वीरों और मनस्वी लोगों के लिए नहीं।"

जीवन की विचित्र दशा हो रही थी। वह विस्फारित नेत्रों से उसकी ही ओर देख रहा था और हृदय में सराहना कर रहा था। वह अपनी भूल, अपनी कल्पनाओं को झूठा समझ झेंप गया। क्योंकि चित्रा ने कल्पना द्वारा पूर्ण रूप से जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।

उसके मादक हृदय में पहले ही से अनेकों प्रकार की भावनायें सदा नवीन ऋतुराज धारण किये प्रेमांकुर सिंचित करने हेतु आती थीं। चित्रा पर उसने चातक की भाँति स्वयं को समर्पण कर दिया था। उसके हृदय में भावनायें उत्पन्न होतीं, पर अनुकूल न पा पुनः वापस लौट जातीं। चित्रा से उसका हृदय विचलित हो जाता। उसके अरमानों की थाली तनिक घबराहट से डिग,

पाषाण फर्श पर गिरकर चूर-चूर हो जाती।

दोनों की भावनायें और विचार एक ही गये थे, किन्तु वास्तविक दशा में अन्तर अब भी व्याप्त था। आन्तरिक दशा एक होते हुए भी बाह्य जगत में असीम यश की इच्छा थी। एक था चादर पर भीख माँगने वाला भिखारी और दूसरी थी महलों में रहने वाली राजरानी।

बाबूजी प्राचीन विचारों के कायल थे। वे नहीं चाहते थे कि चित्रा की शादी एक भिखारी से हो। वे तो अपने जैसे व्यक्ति की खोज में थे।

किन्तु हाय रे प्रेम! तू धन्य है! तेरी सामर्थ्य जगत् रचयिता से किसी भाँति कम नहीं है। यही कारण है कि समस्त संसार अपना यौवन पसार कर तुझे प्राप्त करने में अपनी काया विलीन कर देता है। वास्तव में तू स्वर्गवासी है। तेरी शक्ति अपार है। तभी तो एक गरीब ब्राह्मण साक्षात् द्वारिकाधीश को पा सका। नहीं तो 'कहाँ सुदामा बापुरो....कृष्ण मिताई योग।' तूने दरिद्रता से दुखित दरिद्र प्राणी सुदामा को साक्षात् द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण भगवान से मिला दिया।

● ●

स्नेह-सिंचित, गहन छाया से निर्मित, सुन्दर वृक्षावलियों से आच्छादित गद्देदार मुलायम, प्रेम-पथ पर चित्रा और जीवन दोनों तीव्र गति से अग्रसर हो रहे थे। एक दूसरे को देखे बिना वे निमिष मात्र भी नहीं रह सकते थे। उसकी आयु छोटे-छोटे खाने को पार करनेवाली घड़ी की सूईयों की भाँति आगे बढ़ रही थी। वे अब

सयाने हो चले थे। इतनी उम्र तक दोनों निर्विघ्न रूप से चले आये। समाज, जाति, धर्म सभी ने देखा, किन्तु किसी ने तनिक न रोका। तनिक रुकावट नहीं की कि इन दोनों का प्रेम उचित है या अनुचित।

दुनिया की कौन कहे? स्वयं उसके पिता भी अन्धे हो गये थे। गुस्सा होने को कौन कहे, उन्होंने उन्हें उसी पथ पर प्रेरित होने की अनुमति दे दी। यही उनको दी गई स्वतन्त्रता भविष्य में जीवन दुखित करने, उजाड़ने में पूरी सफल हो गई।

उनके बढ़ते हुए प्रेम को देखकर पिताजी अधिक खुश होते। बस फिर क्या? उन दोनों के लिए मानो नन्दन कानन निवास हो गया। किन्तु यह संसार क्षणिक है। इसका समूल विध्वंस हो जाता है। समय चक्र के परिवर्तन से सुख का घेरा बदल जाता है और उसके साथ-साथ दुख का भयानक कोप आ जाता है।

इतनी दूर तक निर्विघ्न रूप से चले आने पर उन दोनों ने समझ लिया था, अब उनके मार्ग को कोई नहीं रोक सकता। इसी कारण वे अपने को नितान्त सुखी कहते थे और अनेकों प्रकार की भावनाओं की अट्टालिका निर्मित कर रहे थे।

किन्तु यह उन दोनों की भूल थी। उनके नेत्रों के समक्ष मादकता की लाली खिंच गई थी। मादकता के स्पर्श से वे दोनों भविष्य के भयानक अन्धकार को भूल गये थे। वे सीमित दायरे के अन्दर ही रह गये। क्षणिक दृष्टि उठाकर भी न देख सके कि घेरे के बाहर संसार उनके लिए क्या कानून पास कर रहा है, समाज क्या व्यवस्था कर रहा है?

दुनिया को कमजोर समझ वे भूल गये कि भविष्य में उनका भी सम्पर्क इसी संसार से होगा।

धीरे-धीरे वे अपनी गहन छाया से दूर आ दूसरी राह पर पैर रख चुके। ऐसी राह पर जो वास्तव में कंटकाकीर्ण होती है और जिसका अन्त विनाश के गर्त की ओर होता है। संसार जानता है इस पथ का पथिक कभी भी आबाद नहीं होता। नाना प्रकार कि क्लेशों को सहन करता हुआ वह अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है।

समाज के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। अपने हाथ से चलाई गई छुरी से आहत बकरे को छटपटाते देखकर भी उसका जी नहीं पिघलता। बड़े गर्व से कहता है वही समाज--

'जस करनी तस भोगहु ताता।'

स्वयं पर निछावर होते देखकर भी संसार अपने से बहिष्कृत कर ही देता है। भूलकर भी उसका नाम नहीं लेता। इस पथ का पथिक दुनिया-समाज का केन्द्र बन जाता है। लोग उसे घूर-घूर कर देखने लगते हैं। क्षुधित सिंहनी की भाँति समाज उसे तनिक आबाद होते नहीं देख सकता। लोग उस अभागे पथिक को आँखों का खार बना लेते हैं। न जाने क्यों ऐसा होता है?

अब तक जीवन और चित्रा का बचपन एक साथ खेल-कूद में व्यतीत हुआ, किन्तु जवानी आते ही अपने आप ऊँगलियाँ उठने लगीं। पर क्या नुकसान यदि दोनों की जवानी इसी प्रकार खेल-कूद में बीत जाय। किन्तु सामाजिक बन्धनों को कौन तोड़ सकता है? किसमें इतनी सामर्थ्य है जो जरा-सा चूँ कर सके? फिर भी लड़कपन जवानी से कम महत्वशाली नहीं होता, तो जवानी कलुषित और भयपूर्ण। लड़कपन स्वर्ग की ओर खींचती है, तो जवानी नर्क की ओर।

× × ×

पिताजी का साहस, समाज की भयंकर प्रकोप और जाति से बहिष्कृत की भयंकर ताड़ना से थर-थर काँपने लगा। वे अपने पथ से विचलित हो गये और भावी विपक्ष से काँपने लगे। आखिर एक दिन उन्होंने कह ही दिया।

"चित्रा !....अब तू सयानी हो गई। कुछ समझ कर कार्य कर। तू निरी बालिका नहीं है जो तुझे समझाया जा सके। स्वयं अपना भला-बुरा सोच सकती है...."

चित्रा चिन्तित-सी खड़ी रह गई। वह पिताजी के उद्देश्य को कुछ भी समझ न सकी। तत्क्षण दृग नीचे कर लिया उसने।

"आखिर आपके कहने का तात्पर्य ?" उसी भाँति पूछा उसने।

"हैं, मेरे कहने तात्पर्य पूछती है ! अभी तक तू नहीं समझ सकी।" कठोर स्वर में कहा उन्होंने।

"नहीं पिताजी।"

"तू स्वाधीनतापूर्वक जीवन के संग घूमती और...यह अब आदत छोड़ दे। इसी में तेरी भलाई है और यही मेरे कहने का मतलब है। हमारा समाज इसी बात को चाहता है।"

अपने सम्पर्क में एकाएक इस प्रकार का प्रतिबन्ध देख, उसे एक कठोर ठेस-सी लगी। करीब हो था कि हृदय से एक चीख निकल पड़ती किन्तु बाबूजी के भय से उसे दिल में ही दबा लिया। चुपचाप नखों से जमीन खुरचने लगी। आँखों के सामने गहरा अँधेरा छा गया। कुन्दन-सा रङ्ग तत्क्षण फीका पड़ गया। गहरी चिन्ता में निमग्न हो गई वह।

उसी दिन से बराबर वह व्यथित रहने लगी। रात-दिन व्यतीत होते गये, किन्तु वह अपने हृदयगत विचार न सुलझा सकी। उपाय ही नहीं सूझ पड़ता था उसे कि किस प्रकार धर्म के इन ठेकेदारों

को, सनातन धर्म का ढोंग रचने वाले इन पाखण्डियों को समझा सकेगी।

पिता की बातों को वह भली प्रकार समझ रही थी। किन्तु लाचार थी, हैरान थी, अपने पिता को कैसे समझा सकती थी कि उनका प्रेम भागीरथी की भांति स्वच्छ एवं निर्मल है। उसमें समाज का बन्धन रुकावट नहीं डाल सकता। दुनिया वालों को किस भांति बता सकेगी कि उसका प्रेम शुद्ध है, वासनामय कुत्सित इन्द्रियों की जलन शान्त करने वाला नहीं है। उसमें इसकी तनिक भी बू नहीं है। उसके प्रेम में धर्म की दुरूह बातें बाधा नहीं डाल सकतीं किन्तु वह अपने हृदय के विचारों को स्पष्ट रूप से किसी के समक्ष व्यक्त न कर सकी। इसी कारण भविष्य में उसे घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

× × ×

जीवन ने चित्रा का मन लड़कपन में न जाने कितनी बार जीत लिया था। यौवनावस्था में भी वह विजित होने के दावे से वंचित न रह सका, हालांकि यौवनावस्था आने पर वह कुछ खिंच-सी गई। इधर पिता की ताड़ना से वह और डरने लगी। उसे अब जीवन से हँस-हँस कर बातें करने में भय लगने लगा। जीवन ने एकाएक इस परिवर्तन को लक्ष्य किया, किन्तु कुछ पूछ न सका।

इतना उलट-फेर होने पर भी वह चित्रा को देखते ही पागल हो जाता और हँस-हँस कर बातें करने लगता।

उस समय चित्रा की विचित्र परिस्थिति हो जाती। वह उसे ऐसा करने से रोक न पाती क्योंकि स्वयं को उस पर निछावर कर चुकी थी। इसी कारण वह उसकी बातें सुनती थी। उसे उसमें

असीम आनन्द प्राप्त होता था। मन ही मन वह पिता के भयानक प्रकोप से डरती थी। कहीं वे देख न लें, अचानक इस भाव के उत्पन्न होते ही वह व्याकुल हो जाती थी, किन्तु इसको वह जीवन के समक्ष रखना भी नहीं चाहती थी। इस समय उसकी दशा दोहरे प्रबन्ध में पड़ी प्रजा की-सी हो रही थी। गालों पर हाथ धरे कमरे में बैठी हुई वह ऐसी ही भावनाओं में डूबती रहती।

× × ×

"चलो न चित्रा! आज बाग को ओर घूम आयें।" कमरे में पहुँचते ही जीवन ने कहा।

"तुम्हारे साथ, नहीं जीवन, अब मैं तुम्हारे साथ कहीं घूमने नहीं जा सकती।" एकाएक उसके मुख से निकल पड़ा।

सुनते ही उसके पैरों की जमीन खिसक गई, वह सोचने लगा— ऐसा क्यों? आज से पहले इसने कभी ऐसा नहीं कहा था ....फिर आज क्यों कह रही है?

"चित्रा! चित्रा!! तुम पागल हो गई हो क्या?"

"अभी तक तुम नहीं समझ सके?"

"नहीं तो ....बोलो....जल्द बोलो चित्रा!...."

"जीवन! क्या तुम नही जानते? पिताजी कह रहे थे कि गाँव वाले हम दोनों को बुरी तरह बदनाम कर रहे हैं। बार-बार जाति से च्युत कर देने की धमकी दे रहे हैं। जब कभी हम दोनों एक साथ बाहर जाते हैं तो लोग हमें घूर-घूर कर देखने लगते हैं। इस समय सारे गाँव को कौन कहे, स्वयं पिताजी ही अधिक रूठे हैं।"

एक बारगी जीवन काँप कर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

"पिताजी रूठे हैं...क्यों ? प्रेम के लिए, बातचीत करने के कारण, साथ-साथ घूमने के कारण।" धीरे-धीरे उसके मुख से अस्फुट शब्द निकलते गये।

एकाएक उसे बेहोश होते देख चित्रा अपनी मोठी भूल पर पछताने लगी। उसकी आत्मिक शक्ति अपार थी। उसका हृदय प्रशान्त महासागर था जो जरा-सी गर्मी से न तो उबल ही सके और न जरा-सी सर्दी से ठंढा हो सके। घबराहट के समय भी उसकी चेतना लुप्त न होती थी। वह फौरन शीतल पानी ला उसके मुख-मण्डल पर छींटे देने लगी। कुछ देर बाद जीवन स्वस्थ हुआ।

छिः ! छिः ! इतनी हार्दिक कायरता व्याप्त है मुझमें।

जीवन अपनी कायरता सोच झेंप गया। भला इस छोटी-सी बात में घबड़ाने की क्या आवश्यकता थी। फिर भी वह कहता ही रहा—"पिताजी रूठ गये।"

"तुम बड़े पागल हो, पिताजी रूठ गये, रूठ जाने दो। मैं मानती हूँ तुम दुनिया के लिए तुच्छ हो ? स्वच्छन्द रूप से मुझसे सम्पर्क के लिए अयोग्य हो। मैं वैभवशालिनी हूँ। किन्तु इसमें क्या ? प्रेम सहृदयता देखता है। प्रेम कितना सरस, कितना आह्लादमय शब्द है। पिताजी रूठ गये, इससे तुम किसी भी दुर्भावना का ध्यान न करना। हम तुम जो हैं वही होकर रहेंगे।

हमें-तुम्हें जाति, धर्म, समाज, पिताजी की ताड़ना तनिक भी अलग नहीं कर सकती। मानवीय शक्ति को कौन कहे, दैवी शक्ति भी जुदा नहीं कर सकती। जीवन, मेरे जीवन ! यह निश्चय समझो, हम-तुम आकाश में स्थिर ध्रुव तारे की भाँति सदैव अटल रहेंगे, कभी भी लुप्त नहीं हो सकते। किसकी सामर्थ्य

है जो तुम्हें मुझसे अलग कर सके। मेरे प्राण ! मैं प्रलय तक तुम्हारा साथ दूँगी।"

× × ×

जेल की घनी अँधेरी, और चारों तरफ से वेद शून्य कोठरी में जिस भाँति फाँसी का हकदार कैदी प्रत्येक समय वार्ड के पास से गुजरने वालों की बातें ध्यानपूर्वक सुनता है, जिनके एकमात्र फड़कते अधरोष्ठों पर जीवन -डोर कायम रहती है, ठीक उसी भाँति जीवन अब प्रत्येक समय 'वीरन महल' में चैतन्यतापूर्वक रहता। वह बाबूजी के पास आने वाले व्यक्तियों की बातें सुनता।

इधर चित्रा मौका पा फौरन उसके पास आ उस पर व्याप्त कालिमा हटाने का प्रयत्न करती....किन्तु बेकार—लोहे की हथकड़ियों में जकड़ा हुआ कैदी जिस भाँति उसे तोड़कर स्वतन्त्रता की ओर भाग चले, ठीक उसी भाँति जीवन, अभागा जीवन, उतनी आलीशान अट्टालिका में रहते हुए भी चाहता था—उसकी दीवारें लाँघ सुदूर निकल जाय, किन्तु न जाने कौन-सी शक्ति उसे ऐसा करने से रोक देती थी और कहती थी—"सहे चलो.... भविष्य।"

वह आह करके बैठ जाता। पूर्ण स्वतन्त्रता पाते हुए भी वह भाग न सकता। ज्यों-ज्यों भागने की समस्या सुलझाता त्यों-त्यों बेकल हो जाता। चित्रा की मदमयी मूर्ति नेत्रों के समक्ष झूल जाती। वह उसी में अपनी हृदयगत भावना को भूल जाता। सोचने लगता—"आह, कितना ममता-शून्य अत्याचार है इस हिन्दू समाज का, कितनी कड़ी आज्ञा है बाबूजी की।"

एक ही महल में रहते हुए भी दो प्रेमी हृदय अपनी-अपनी

जलन, अपनी-अपनी व्यथा परस्पर व्यक्त करने के लिए छटपटा रहे थे। किन्तु किस्मत की बदनसीबी, वे परस्पर निमिष-मात्र को भी मिल नहीं सकते थे।

जगत रूठ गया, उसे रूठ जाना चाहिए क्योंकि उसका कोई नहीं है। किन्तु उस अभागे का तो तू ही है न? तूने उसका निर्माण किया है। तू क्यों रूठ गया। तेरे विचार में उस अभागे के प्रति क्यों इतनी उपेक्षा भरी है। उस सर्व-सुख वंचिता के विषय में क्यों इतना पक्षपात कार्पण्य है। यदि देव होकर तू भी रूठ गया तो भविष्य में जीवन की क्या आशा?

इसी भाँति छटपटाते हुए दिन, सप्ताह, महीने, समाप्त होते पूरे एक वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु पिताजी की कड़ी दृष्टि उन पर से परे न हो सकी और न वे परस्पर मिल सके।

अब नियति-चक्र ऐसा अनुकूल आया कि वे कभी-कभी मिल जाने लगे, फिर भी बड़ी सतर्कता और घबराहट से। इस घबरा-के क्षणिक मिलन में उन्हें असीम आनन्द आता था।

तनिक मिलने से दोनों का हृदय सुखी रहने लगा, फिर भी जीवन का स्वास्थ्य गिरता ही गया। सदैव मानसिक व्यथा से उसकी शक्ति नष्ट होने लगी। महीने में प्रायः दो एक बार वह बीमार भी होने लगा। था तो वह पराधीन किन्तु अन्य व्यक्तियों की भाँति बीमारी की हालत में चुपचाप न रहता। दैव ने उसे आराम करने के लिए नहीं, बल्कि सदैव कष्ट झेलने के लिए बनाया था। वह दर-दर की ठोकरें खानेवाला एक भिखारी था। उस घर का तमाम कार्य करना पड़ता। यदि न करता तो 'बोरन महल' में रहता ही क्यों? इधर बाबूजी की ममता पहले की-सी उसपर थी भी नहीं। इसी कारण वह दुखित रहता।

उस दिन वह सख्त बीमार था फिर भी उठा और महामाया के पूजन हेतु पुष्प-कलियाँ लाने उद्यान की ओर चला गया। वहाँ जा उसने देखा, अशोक की छत्र-छाया, उसके विकसित रक्तवर्ण पुष्प....देखते ही वह मोहित हो गया और सोचने लगा—किस भाँति पा सकेगा उन पुष्पों को ! साहस करके वह वृक्ष पर चढ़ गया। पर शक्ति तो उसकी क्षीण थी ही, तत्क्षण गिर पड़ा और बेहोश गया।

× × ×

"भैया सो जा रे, मुन्ना सो जा रे, आधी रात हो गई।" पास ही कोई गृहिणी अपने नन्हें शिशु को गोद में लिए सुलाने का उपक्रम कर रही थी।

घोर नीरवता व्याप्त थी। यावत जगत सुखदाई निद्रा में लीन था किन्तु चित्रा की आँखों में नींद न थी। अपने कमरे में कुर्सी के सहारे बैठी हुई वह रात्रि की अर्द्ध बेला में मो न जाने क्या सोच रही थी। कमरे की बत्ती गुल थी।

धीरे से वह उठी और दरवाजे के समीप आ आहट लेने लगी। एक लम्बी श्वांस लेती हुई प्रांगण में आई और सीढ़ी के सहारे नीचे उतर सामने के कोठरी की ओर चली गई।

दरवाजा बन्द था, उसने धीरे से हाथ रखा। हाथ रखते ही खुल गया। वह अन्दर चली गई।

"इस समय तक तो तुम्हें अवश्य होश आ गया होगा...." प्रकोष्ठ में पहुँचते ही उसने कहा।

रात्रि की अर्द्धबेला में जीवन दर्द से कराह रहा था।

सरलतामयी वाणी के कर्णगोचर होने से इतनी नीरवता में वह चौंक गया। अँधेरे में ही आँखें फाड़-फाड़ देखने का

उपक्रम करने लगा।

कुछ क्षण बाद—

"तो क्या मैं अचेत हो गया था ?" पूछा उसने।

चित्रा चुप थी क्योंकि वह अज्ञात भय से भयभीत हो रही थी।

"चित्रा ! बोलो ? यहाँ पर मुझे कौन लाया था ?"

"...."

"बोलो चित्रा ! मेरी बातों का जवाब दो। इतनी रात्रि व्यतीत होने पर तुम न जाने किस तरह मेरे पास आई हो। बाबूजी क्रोधित होंगे, जरूर होंगे। क्योंकि वे हमारा निमिष-मात्र मिलना भी बहुत गहरा अपराध समझते हैं ...आह !"

एकाएक बाबूजी की आँखों का तेज रूप उसके सामने घूम गया। वह भय से काँपने लगा। उसकी जबान में कँपकँपी सवार हो गयी।

"तुम काँपते हो। नहीं, काँपो नहीं, डरने की क्या आवश्यकता है ? ओफ्, तुम बड़े बुजदिल हो जीवन !"

"उंह, छोड़ो इन बातों को !" करवट बदलते हुए उसने कहा—"एक बात बतलाओ चित्रा ! बोलो बता सकती हो ?"

"कौन-सी बात है ?" पूछी चित्रा।

"तुम्हें पिताजी इतना कोसते हैं फिर भी तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति इतनी दया, इतनी समवेदना भरी है...इसका कारण ?...."

चित्रा शान्त थी। केवल उसके नेत्रों में आंसू की बूंदें छा गयीं।

"चित्रा ! बोलो....जल्द बोलो ?" जीवन ने पुनः कहा।

"क्या बोलूं जीवन ? इसका कारण, क्या बतलाऊँ...यह तो अपनी-अपनी इच्छा है।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ कि अपनी-अपनी इच्छायें ही प्रबल होती हैं, किन्तु ऐसी इच्छायें होती क्यों हैं ? क्या बता सकती हो?"

"तुम भी विचित्र पागल हो....किसी की क्यों इच्छा होती है, बता सकता है ?"

एकाएक जीवन के हृदय में न जाने क्या भाव छा गया। मुख से निकल पड़ा—"तुम शीघ्र चली जाओ।"

"क्यों चली जाऊं ?" उसने पूछा।

"मेरी इच्छा...."

"ओफ् ! तुम मेरा उपहास....जीवन ! मेरी इच्छा तुमसे बात-चीत करने के लिए प्रबल हो रही है।"

"अच्छा बोलो। जो कुछ भी कहना हो शीघ्र कहो।...." जीवन ने कहा।

"ठहरो, ठहरो जरा सोच लूँ तो कहूँ ! ओफ्...भूल गई, क्या कहने जा रही थी।"

"ऐसी भूल, इतनी कम उम्र में शोभा नहीं देती।"

"यह तो ठीक है, किन्तु भूल तो मेरी जीवनसंगिनी है। बात कोई सुने ! मेरे लिए जीवन में ऐसी कोई मर्मस्पर्शी बात नहीं है जिसे मैं भूल न सकूँ।"

"तब तो शायद भविष्य में मुझे भी भूल जाओगी चित्रा !"

चित्रा एकाएक चौंक गई। जीवन की इतनी गहरी समस्या पर सोचने लगी—"नहीं, नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता जीवन !"

"हो सकता है। क्योंकि तुम्हारा भूल जाने का स्वभाव है।"

"..............."

"उँह, छोड़ो न बातों को। जो रातें बीत रही हैं उन्हें बीतने दो चित्रा ! उनका ख्याल करना बेकार है। हाँ, एक बात

कहते-कहते मैं भूल ही गया था।"

"क्या ?" चित्रा ने पूछा।

"इतने दिन व्यतीत हो गये। जिस बात को मैं अब तक भूल कर भी कभी तुम्हारे समक्ष नहीं रक्खा था। उसे आज कहता हूँ। क्या स्वीकार कर सकती हो चित्रा !"

"जरूर...." चित्रा ने गम्भीर स्वर से कहा।

जीवन की विचित्र स्थिति थी। कहने को तो उसने कह दिया, किन्तु वाणी से व्यक्त न कर सका और अपनी भूल पर पछताने लगा। मन ही मन सोचने लगा— यह कैसे हो सकता कि यह प्रत्येक समय मेरे पास रहे। ओफ् इतनी जलन, इतनी व्यथा, किस भाँति सहन कर सकूँगा। जो मैं चाहता हूँ, उसके लिए संसार, समाज, आज्ञा नहीं दे सकता, यह कितनी वैभवशालिनी है और....

"बोलो जीवन, क्या कहते हो ?" चित्रा ने पूछा।

"कुछ नहीं..." बोला जीवन।

"आखिर कुछ...."

"कोई ऐसी बात नहीं है चित्रा ! मैं चाहता हूँ कि तुम..." आगे वह कह न सका।

किन्तु चित्रा उसके हृदयगत भाव भली भाँति समझ गई और तत्क्षण....ह....ह....ह....एक ठहाका कोठरी में गूँज पड़ा।

"उफ चित्रा ! तुम नहीं जानती मेरे हृदय को। मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे बिना मेरा जीवन एक पल भी टिक नहीं सकता। बोलो, चित्रा। तुम्हीं मेरी सर्वस्व हो। मेरे प्राण एक मात्र तुम्हारे ही पर निर्भर हैं। बोलो, जल्दी बोलो ! यह जीवन तुम्हारा है ?"—कहते हुए जीवन ने दोनों भुजायें फैला उसे अपने अङ्कपाश में आबद्ध

कर लिया और तत्क्षण उसके रक्ताभ अधरोष्ठ को चूम लेना चाहा।

चित्रा लज्जा से तिलमिला गई और उसके मुंह से निकल पड़ा—"नहीं, नहीं, इतनी जल्दी शोभा नहीं देती।"

वह अपने को छुड़ाने का उपक्रम करने लगी।

"मेरी आशाओं पर तुषारपात न करो चित्रा!" पहले से अधिक उसे दबाते हुए उसने कहा।

"चित्रा! चित्रा!!" जोरों से आवाज आई। कहने के ढंग में मधुरता के साथ-साथ कठोरता भी व्याप्त थी।

पिताजी, इतनी रात में कैसे आ गये, चित्रा के हृदय में प्रश्न पैदा हुआ।

"चित्रा!" पुनः सुन पड़ा। इस बार पहले से भी अधिक कठोरता थी, साथ ही किवाड़ पर थपकी पड़ी।

जीवन का बुरा हाल था, वह तो पहली आवाज में ही बेसुध हो गया था।

चित्रा की कंठस्थली सूख गयी और वह भय कांपने लगी।

धीरे से, एक झटके के साथ उसके पिता ने कमरे में प्रवेश किया।

"चित्रा!" कठोर स्वर में पुकारा उन्होंने।

चित्रा मौन, गर्दन झुकाये कांप रही थी। वातावरण सायं-सायं कर रहा था। समस्त मकान में बाबूजी का स्वर गूंज गया।

"तुमसे मैंने कितनी बार कहा फिर भी ओफ्! मेरी आज्ञा की इतनी अवहेलना, मेरी बातों का इतना तिरस्कार...तेरी इतनी हिम्मत! बोल यहाँ क्यों आई।"

चित्रा कुछ कहने ही जा रही थी कि चट चट... के साथ उसके मुलायम गालों पर उनकी ऊँगलियाँ जा पड़ीं।

वह थर-थर कांप गई। नेत्र सजल हो गये।

"इतनी शोखी, भा चल ?...." कठोर स्वर के साथ कह बाबूजी लौट पड़े।

बाहर आ उन्होंने उसे चेतावनी देते हुए कहा—

"जा, चुपचाप सो जा ? तुझे मैंने बड़ी हिम्मत से प्राप्त किया है। इस बार तुझे माफ़ करता हूँ किन्तु भविष्य में बोटी-बोटी काट डालूंगा।"

• •

यों तो मदन ने शरद के लिए न जाने कितने ट्यूटर लगा रखे थे किन्तु कभी-कभी वह स्वयं उसे पढ़ाने लगते, कुछ न कुछ पूछने लगते। अन्य दिनों की भांति आज भी वह शरद को, जो अंग्रेजी की सातवीं श्रेणी में था पढ़ा रहे थे।

"किसी देश का इतिहास जानने के लिए वहाँ का भूगोल जानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि भूगोल से ही वहाँ की स्थिति और प्राकृतिक दशा का ज्ञान होता है। जलवायु, पैदावार और व्यापार का समाचार विदित होता है। वहाँ की प्राकृतिक दशा से उस देश की हालत मालूम होती है—पहाड़ी है, बलुई या उपजाऊ भूमि है। वहां के निवासियों की शक्ति का ज्ञान होता है। जलवायु से वहां के लोगों का स्वभाव, वर्षा और गर्मी का तापक्रम मालूम होता है, जिस पर वहाँ की पैदावार निर्भर है। जिस देश की जितनी ही अच्छी स्थिति और प्राकृतिक दशा होगी उस देश की गणना अन्य देशों से उतनी ही अच्छी होगी। इसीलिए किसी देश का इतिहास जानने के पहले वहाँ का भूगोल जानना आव-

श्यक है।"

रंगमयी सुनहली किरणें कमरे में प्रवेश कर उसे सुनहला बना रही थीं। भोला शिशु शरद कुमार मेज पर "आदर्श इतिहास" फैलाये पढ़ रहा था।

इतिहास में लिखित एक-एक वाक्यों को स्पष्ट रूप से मदन समझा रहे थे। पढ़ाने में उनकी आकांक्षा प्रबल थी। वह एक-एक वाक्य को तस्वीर की भाँति उसके हृदय-पट पर जड़ देना चाहते थे। शरद कुमार चुपचाप विस्फारित हो पिता के एक-एक शब्दों को सुन रहा था। वे उन्मत्त शराबी की तरह झूम-झूम कर पढ़ा रहे थे।

आधी आधी रतियाँ सैयाँ पिछले हो पहरवाँ,
राम दगा देई के ना,

गहरे स्वरों से ताँगे वाला गाता हुआ फुटपाथ पर मन्द गति से चला रहा था।

एकाएक इतने जोर की रागिनी महल के भीतर पढ़ाते हुए मदन के कर्ण कुहरों को शीतल करने से न रुक सकी।

सुनते ही मदन सन्न हो गये। न जाने कौन-सा रहस्य निहित था इस झीनी-झीनी स्वर लहरी के एक-एक शब्द में, जो वे पागल हो गये। तत्क्षण उनका चेहरा फक हो गया। उनकी आँखें ऊपर की ओर उठ गईं। क्षण-मात्र को वे भूल गये। अनायास मुँह से निकल पड़ा 'न गाओ, न गाओ भाई इस दर्दीले गीत को, सुनते ही हृदय में ज्वाला फूंक देता है।"

× × ×

शरद ने पिता के एक-एक शब्द को सुना, अचानक बदलते

हुए उनके भाव को देखा, किन्तु वह कुछ भी न समझ सका—ऐसा क्यों ? जी में आया पूछे ताऊजी से किन्तु वह पूछ न सका।

शरद कुमार एक भावुक बालक था। वह छोटी-छोटी बातों पर अधिक विचार करता था। एकाएक ताऊजी के बदले हुए भावों को देखकर उसने समझा—इसमें अवश्य कोई न कोई रहस्य है। क्या है ? यह जानने के लिए उसकी कांक्षा प्रबल हो उठी। यही कारण था कि पिता को ड्रेसिंग रूम में जाते देख वह चुपचाप उनके पीछे-पीछे चला आया और दरवाजे से सिमट कर भीतर का दृश्य देखने लगा।

स्वर को सुनते ही मदन के हृदय में खलबली मच गई। अतीत काल के चित्र सिनेमा के पर्दे की भाँति नेत्रों के समक्ष दौड़ने लगे। भूली यादें पुनः नवीन रूप से मानस पटल पर अवतरित होने लगीं। वह उसी में तन्मय हो गया।

सम्पूर्ण कमरा बिजली के प्रकाश से आलोकित हो रहा था किन्तु उसे सुध न थी। वह सोच रहा था अतीत की बातें, याद आ रही थीं जवानी की रातें।

ओह ! बहुत दिन गुजर गये। दैव ने बहुत घोर परिवर्तन कर दिया। उस समय वह तरुण था। चेहरे पर नवीन मुस्कान थी। मीनी-मीनी मूँछें निकल रही थीं। मुख-मण्डल नितान्त सौन्दर्य-युक्त था। दिन था या रात थी ठीक से याद नहीं पड़ता। वह घूमने जा रहा था, वह कुएँ से पानी ला रही थी। दोनों की आँखें चार हुईं। उसकी आँखें दया की भीख मांग रही थीं, इसकी आँखें मदान्ध थीं। जैसे ही वह ठमकी, मदन ने कहा—"मुझे प्यास लगी है।"

वह पानी उड़ेलने लगी और उसने... (ठीक-ठीक याद है)

उसकी नाजुक कलाई पकड़ लिया। आह, वह जिन्दगी....पालिश की गई सुनहली जिन्दगी थी।

उसे भली प्रकार याद है, उस दिन अत्यन्त आकर्षक और मन-मोहक चाँदनी रात थी। ऊपर आकाश में सुकुमार चाँद मुस्कुरा रहा था। उसकी मस्तानी किरणें लहरों से कल्लोल कर रही थीं। ठीक उसी समय कमला, वैभवशालिनी कमला, जिसके साथ नियति ने गहरा मजाक खेला था, दैव ने जिसका सुहाग-सिन्दूर लूट लिया था, पारिजात लता के नीचे निर्मल पवन के झकोरों में हँसते-हँसते अपना सर्वस्व निछावर की थी और कही थी—"प्रियतम तुम पर वारि गई।"

फिर न जाने कितने दिनों के बाद एक दिन उसने उसे बहका दिया और पालतु कुतिया की भाँति उसके साथ....आह, वह जिन्दगी बादलों की एक रंगीन सन्ध्या थी।

बहुत दिनों के बाद एक दिन उसने उसे ठुकरा दिया। दया के योग्य होनेवाली निर्बल, असहाय अबला—कमला को रात्रि की बेला में सोते छोड़ चुपचाप भाग आया। उस समय वह बिलकुल अनाथ थी। उसके पेट में बच्चा था जिसका नौवां महीना चल रहा था।

हाय! क्या हुआ होगा उस अभागिन कमला का, उसके नव-जात शिशु का? सोचते-सोचते मदन की आँखें बन्द हो गई।

उसने देखा—

वैभवशालिनी कमला, साक्षात् रणचण्डी-सी, विप्लवी वीरां-गना-सी एक हाथ में खप्पर लिये चली आ रही है। उसकी मदांध आँखें साक्षात् यमदूत जैसी उसे घूर रही हैं।

मदन एकबारगी काँप गया और अनायास उसके मुँह से निकल पड़ा—"कमला! कमला तुम यहाँ क्यों यहाँ आई? अब समझा

बदला लेने, इन्तकाम लेने..."

× × ×

शरद कुमार पिता की इस घबड़ाहट को देखते ही कांप गया और मन ही मन कहा— अब समझा।

"पिताजी ! पिताजी ! !" तत्क्षण उसने पुकारा।

मदन के नेत्र आवाज से खुल गये। वे अब भी विस्फारित हो समग्र कक्ष घूरकर देख रहे थे। कमला की याद अब भी उन्हें कंपा रही थी।

• •

चित्रा !

उसने धीरे से द्वार खोला। आगन्तुक एक हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ नवयुवक था जिसके चेहरे पर रेखें निकल रही थीं।

कमरे में पहुँचते ही उसने चित्रा को अपने अंक-पाश में आबद्ध कर लिया और उसके साक्षी स्वरूप मुलायम गालों को चूम लिया। नवयुवक ने यह कार्य इतना शीघ्र किया कि चित्रा संभल भी न सकी।

"आखिर हम कब तक इस प्रकार भवजाल में पड़े रहेंगे और छिप-छिप कर मिला करेंगे। हृदय निमिषमात्र जुदाई नहीं बर्दाश्त कर सकता। उफ् ! यह जलन, व्यथा, प्यास, परेशान किये जा रही है।" गद्दे पर बैठते हुए नवयुवक ने कहा—"बोलो चित्रा !"

"न जाने कितने दिनों तक अन्धकार में पड़े रहना है जीवन। जहाँ का पथ अन्धकारपूर्ण है वहाँ के पथिक की क्या दशा होगी।

इस हालत में जो कुछ हो जाय थोड़ा है। यही अन्ध
टटोलना है, जिसमें न जाने कितनी ठोकरें, न ...
बतें उठानी पड़ेंगी। न जाने कितनी टक्करें खानो ...
भी हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे या नहीं, यह कौन
चित्रा ने तनिक हँसकर कहा।

"आखिर इस हिन्दू समाज में क्यों इतना अविश्वास भरा है ? धर्म के धुरन्धर नेता क्यों इतने अत्याचारी हैं ? शास्त्रों में क्यों इतने कठोर कानून बनाये गये हैं ? कुछ समझ में नहीं आता चित्रा ! क्या होगा इसका परिणाम ?"

"किन्तु समय नितान्त परिवर्तनशील है जीवन ! इसकी गति एक-सी नहीं रहती है। यदि वास्तव में समाज के नियम कठोरता-पूर्ण हैं, धर्म के ठेकेदार कुकृत्य से भरे हैं और निरपराधों को सजा दे रहे हैं तो निश्चय ही इस प्रथा का एक दिन समूल विध्वंस हो जायगा।"

"तब तक न जाने कितने नवयुवक अपनी जीवन पहेली कलंकित कर कराल काल के ग्रास हो जायेंगे। तेल रहते हुए भी जीवनदीप बुझ जायेंगे और जाने कितने अर्ध-विकसित यौवन को बरबाद कर जायेंगे।"

"बेशक !" चित्रा ने धीरे से कहा।

"हम और तुम भी..." जीवन से पूछा।

"हाँ, मेरे और तुम्हारे सरीखे न जाने कितने !"

"ओफ ! तब तो बड़ी भयंकर कल्पना है चित्रा ! सोचो जरा, धवल-सा उज्ज्वल प्रतीत होने वाला आकाश महल कितना अन्धकारपूर्ण है।"

"तुम नहीं जानते, कल्पना के न जाने कितने पर हुआ करते

बदला तुम अभी अपना जीवन कल्पनामय न बनाओ नहीं तो ....''

कहती हुई चित्रा ठठाकर हंसने लगी। छोटी-सी कोठरी हाके से गूंज गई। तत्क्षण जीवन उसे पकड़ने के अपने स्थान से उठा। वह दूसरी ओर दौड़ उसे अंगूठा दिखा गई। जीवन झेंप गया, हताश न हो पुनः उसे पकड़ने दौड़ा।

इसी दौड़ में चित्रा का आंचल खिसक गया और उसके केश नितम्ब की ओर दौड़ गये।

कमरे का क्षेत्र संकुचित था। लाचार वह पकड़ी ही गई। जीवन ने हल्के रोष से उदीप्त हो उसे अपने अंकपाश में आबद्ध कर लिया। दर्द से वह 'सी' कर उठी।

"कौन ? जीवन !" दरवाजे से कर्कश स्वर सुन पड़ा।

भयानक भय से वह कांप गया। इस कंपकंपी में चित्रा अंक से छूट गई।

एक ही झटके के साथ दरवाजा खुल गया। पिताजी ने अन्दर प्रवेश किया। उनकी आंखों पर भयानक क्रोध नजर आ रहा था।

"जीवन !" पुनः उनके मुख से कठोर ध्वनि निकली। किन्तु न जाने क्यों उनके चेहरे पर मुस्कान की क्षीण रेखा व्याप्त हो गई। मुस्कुराहट में उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख दिया।

"तू डरता है। डर नहीं, मगर मेरी बातों का ठीक-ठीक जबाब दे।...."

जीवन अब भी कांप रहा था।

"क्या हो रहा था...?" पूछा उन्होंने।

"कुछ नहीं..." बड़ी मुश्किल से वह बोला।

"मैंने तुझे न जाने कितनी बार समझाया, फिर भी तू नहीं मानता। मेरे सीधे व्यवहार के कारण तूने नाजायज तरीके से

फायदा उठाने की कोशिश की। मेरी बातों का इतना घोर तिरस्कार! आ चल मेरे साथ ...." कहते हुए वे लौट पड़े।

जीवन साथ-साथ उनके कमरे में आया।

"तुझे इतने दिनों तक पाल-पोसकर बेवकूफ से सभ्य बनाया। फिर भी तू मेरी बातों को नहीं मानता। देख, इस बार मैं अच्छी तरह चिताये देता हूँ—यदि भविष्य में फिर कभी ऐसी गलती हुई तो तेरी बोटी-बोटी काट डालूँगा!" कमरे में टँगी तलवार पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा—"अच्छा जा, सो जा।"

× × ×

बाबूजी की विचित्र स्थिति थी। सारे दिन चित्रा और जीवन, बस यही उलझन तय करने में लीन रहते। क्या करें? क्या न करें?

वे उसे घर से निकाल देना चाहते थे। इसमें कोई परेशानी न थी किन्तु निकाल भी न सके। न जाने कौन सा विधि-विधान था। इसी उलझन में वे अपनी कार्य-प्रणाली भी भूल जाते।

× × ×

उस दिन जीवन ने कहा—"चित्रा! मैं यहाँ आने पर अधिक खुश था और सोचा था अपनी समस्त जिन्दगी यहीं पर व्यतीत कर दूँगा, किन्तु मुझे अब प्रतीत हो रहा, मेरा सोचना गलत था। अब ऐसा होना आकाश-कुसुम गूँथ कर माला पहनना है। क्योंकि पिताजी को हमारी तुम्हारी मुहब्बत अच्छी नहीं लगती। न जाने उन्होंने क्या समझ रक्खा है।"

"मेरी परेशानी का भी एकमात्र यही कारण है जीवन! एक ही घर में रहते हुए भी हम "तुम निर्विघ्न रूप से नहीं मिल

सकते।" चित्रा ने कहा—"बाबूजी का भयानक क्रोध हमें जला रहा है। मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं जी सकती। फिर भी जो कुछ सहन करना था सह लिया। धर्म, समाज हँसे या रोये, पिताजी रूठें या प्रसन्न हों मुझे किसी की परवाह नहीं। मैं लाचार हूँ, मेरा हृदय इतना वियोग सहन नहीं कर सकता। ओफ, मैं बड़ी अभागिन हूँ जीवन!"

"नहीं, नहीं। ऐसा प्रलाप मत करो चित्रा! तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। दोष सब कुछ मेरे भाग्य का है। अभागिन तुम नहीं हो, मैं हूं। देखो, बदकिस्मती की कोई सीमा है।"

"जीवन! क्या कोई ऐसा उपाय है जिसके द्वारा हम तुम एक हो सकें। बोलो, बोलो जीवन! तुम इस तरह क्या सोचने लगे। मैं फौरन उसी युक्ति से अग्रसर होऊँगी। क्या हुआ अगर प्राणों की बलि भी करनी पड़ी ...."

"मैं स्वयं परेशान हूं चित्रा! क्या करूं? उफ्! बाबूजी तो मानो मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये हैं।"

"हम दोनों छटपटा रहे हैं, बिस्मिल होते हुए बकरे की तरह हमारे अरमानों की होली भस्म हो रही है। उफ्! अब ज्यादा नहीं सहा जाता जीवन! बोलो, जल्द बोलो।"

"तो फिर क्या किया जाय? जीवन ने पूछा।

"चलो गाँव से दूर, वहाँ निकल चलें, जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले हुए हैं जीवन! जहाँ धर्म-समाज का, शास्त्र का, किंचित मात्र कानून न हो। तुम चाहे जहाँ उचित समझो मुझे ले चलो? मैं चलने के लिये तैयार हूं। किन्तु इस वैभव से पूर्ण कमरे में एक मिनट रहना दुश्वार है। बेकार ही ताड़ना दी जा रही है। यदि त्रैलोक्य में मुझे तनिक भी स्थान न मिलेगा तो जानते हो क्या होगा?"

"नहीं !" उसने कहा।

"हम लोग आत्महत्या कर प्राण विसर्जन कर देंगे। सिर्फ एक पाप लगेगा आत्महत्या का, किन्तु गम के हाथों से जुदाई भरी घड़ी सहन करने से बच जायेंगे। बोलो जीवन ! तुम्हारी क्या कांक्षा है ?"

"ठीक है चित्रा ! मैं चलने को तैयार हूं।" जीवन ने लम्बी सांस लेते हुए कहा।

"मैं भी तुम लोगों को विदा करने के लिए तैयार होकर आया हूं..." दरवाजे की ओर से कर्कश किन्तु मधुरता के साथ सुनाई पड़ा।

जीवन ने पीछे घूमकर देखा। साक्षात् काल में खड़े बाबूजी होंठ चबा रहे थे। आंखों से भयानक चिनगारियां निकल रही थीं।

"अरे नीच ! जान-बूझकर तू अपनी मौत को बुलाता है ?"

चट...चट....चट दूसरे ही क्षण बाबूजी की सख्त ऊंगलियां जीवन के कोमल गालों पर जा पड़ीं। वह अवाक् था।

"चल मेरे साथ...." कह बाबूजी लौट पड़े।

बेचारा जीवन हथकड़ियों से जकड़े हुए कैदी की भांति उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। जाते-जाते उसकी चंचल दृष्टि चित्रा के नयनों से मिल गई। उसने देखा, उसके नयन-पुतलों पर यह प्रत्यच झलक रहा था कि समय की चक्राकार घटना और किस्मत की बदनसीबी है। वे दोनों मिलकर भी न मिल सके, जुदा हो गए। इसके बाद ही उसकी आंखों से दो बूंदें लुढ़क पड़ीं।

"बेईमान ! दूसरी बार फिर तूने मेरी आज्ञा की अवहेलना की ! क्या मैंने तुझे इसीलिए अपने यहां स्थान दिया था ? ओफ, मैंने तुझे अच्छा से अच्छा भोजन, सुन्दर से सुन्दर पहनने के लिए

कपड़े दिये, क्या इसीलिए ? बोल, बोल तेरे पास इन बातों का क्या जवाब है ?" अपने कमरे में आते ही पिताजी ने कहा—"ओफ, तूने समाज के साथ, मेरे परलोक के साथ विश्वासघात किया। जानता है इतने अपराधों का दण्ड ?....

"नहीं...." बड़ी लापरवाही से कहा उसने, मानो सब कुछ सहन करने को तैयार हो।

"इतने अपराधों का दण्ड हमारे धर्म के कानून में एकमात्र मौत है ....हाँ ....मौत...." बड़े गर्व से कहा उन्होंने और जीवन के मुख की ओर देखा। किन्तु तत्क्षण वे झेंप गये।

उन्होंने समझा था कि मौत के नाम से जीवन घबरा जायगा किन्तु ऐसा कोई चिन्ह न देख वे स्वयं लज्जित हो गये।

"किन्तु मैं तुझे यह सजा नहीं देना चाहता, केवल यही सजा दे रहा हूँ कि अब तू यहाँ एक मिनट भी नहीं रह सकता।"

"पिताजी !..."

"चुप रह, बोलने की कोशिश मत कर। मैं तुझे अपने ही तनय की भाँति चाहता था, किन्तु तेरी....मुझे स्वयं गहरा अफसोस हो रहा है। मगर मैं क्या करूँ ? मैं भी लाचार हूँ—धर्म से, लोगों की व्यङ्गभरी वाणी सुनने से।" उनके स्वर में मधुरता के साथ-साथ कठोरता भी व्याप्त थी।

"अभी अपने जाने का प्रबन्ध कर ले। फिर कभी भूल से भी इधर आने का ध्यान न करना। जीवन, तुझे अफसोस हो रहा है, जरूर होता होगा, पर बेटा अफसोस मत करना .... शिखा, मेरी बेटी है, मेरी राय से काम करेगी।"

बिजिष माघ में यह खबर सारे गांव भर में फैल गई।

× × ×

"आप उसे निकाल रहे हैं।"
"हाँ, निकाल रहे हैं।"
"क्यों निकाल रहे हैं ?"
"क्या करोगे तुम जानकर, तुम्हारा क्या फायदा होगा जानने से। बोलो, चुप क्यों हो गये ?"

× × ×

"आप बहुत बुरा कर रहे हैं।"
"क्यों ?"
"उसे यहाँ से बहिष्कृत कर आप स्वयं अपना पैर काट रहे हैं।"
"अच्छा, अच्छा, तुम यहाँ से चले जाओ, मैं स्वयं अपना भला-बुरा सोच लेता हूं, तुम्हें बताने की कोई आवश्यकता नहीं।"

× × ×

"अरे यार, वह जा रहा है।"
"हूँ, वह जा रहा है ?"
"हाँ... वह जा रहा है।"
"कब जा रहा है ?"
"अभी....अभी...जल्द से जल्द।"

× × ×

"क्यों जा रहा है वह, भाई तुम्हें कुछ मालूम है ?"
"नहीं भाई, मुझे मालूम नहीं।"
"आखिर उसका क्या अपराध था, वह तो बड़ा अच्छा आदमी था।"

"चलो यार, जरा उससे पूछा जाय।"

× × ×

"कहाँ जा रहे हो भाई ?"

"क्या बतलाऊँ, कहाँ जाऊँगा ? जबकि संसार में मेरे लिए तनिक स्थान नहीं, तो कहाँ जाऊँगा, यह कौन जाने ?"

× × ×

"किस प्रकार जीवन व्यतीत करोगे भाई ?"

"क्या उपाय बताऊँ ? ईश्वर की जैसी इच्छा होगी वही होगा भाई ! इसमें किसी का दोष नहीं है।"

× × ×

उसके जाने का समय करीब था। वह बारी-बारी सभी के गले मिलने लगा। सभी के हृदय सचमुच उस समय पिघले जा रहे थे। आँखें सजल होती जा रही थीं और पिताजी, वह दूर खड़े देख रहे थे। इस समय सचमुच उनका सारा क्रोध विलीन हो गया था और चेहरे पर दयालुता की आभा छा गई थी। उनके नेत्र सजल होने से वंचित न थे किन्तु बार-बार वे रूमाल से अपने गीले नेत्रों को सुखाने का उपक्रम कर रहे थे।

वह जाते समय सभी से मिला, अन्त में बाबूजी से भी मिलने की बारी आई।

"बाबूजी !" अवरुद्ध कण्ठ से वह मिलते हुए बोला।

"जीवन !...." कहा बाबूजी ने।

"चलते समय मेरी !....आप पूरा कर दें बाबूजी, मेरे अच्छे

बाबूजी, नहीं तो छूरी से हृदय को दो टूक कर दें बाबूजी..." उसने कहा।

"बोलो क्या चाहते हो ?" बाबूजी ने कहा।

"मैं....चित्रा....बोलिए बाबूजी हुक्म देते हैं ?" जीवन ने कहा।

बाबूजी ने दृष्टि उठाकर जीवन के मुख की ओर देखा। सच-मुच उसके चेहरे पर कुछ ऐसी दयालुता की भीख नजर आ रही थी कि वे नहीं कर सके।

"मंजूर है।" उनके मुख से निकल पड़ा।

× × ×

मानव जीवन कितना सरस, कितना मधुर, कितना आह्लाद-मय है जिसकी गणना नहीं की जा सकती। कभी इसमें ऐसी भावनायें उत्पन्न होती हैं जिनका अनुभव नहीं हो सकता। ऐसी ही भावनाओं के वशीभूत हो जीवन चित्रा के समक्ष कभी-कभी ऐसी बातें उधृत करता, जिस पर वह सहमत न होती। हालांकि दोनों का सम्बन्ध अटूट था, चंदा और चाँदनी भाँति। दो देह एक प्राण थे। दोनों के दिल दूध और पानी की भाँति घुल-मिल गये थे। जिसका अनुभव वह स्वयं करते थे।

किन्तु जब कभी जीवन यौवनोन्माद के वशीभूत हो, कल्पना के सुनहले भूले में भूलने की कांचा से विजड़ित हो, चित्रा के सामने ऐसी बातें उधृत करता, जो सर्वथा निन्दनीय रहतीं, तो चित्रा उन विचारों पर सहमत न होती। उस समय उसके निश्चित विचारों में एक द्विविधा सी छा जाती। उसका मस्तिष्क चकरा जाता और और....और वह सोचने में तन्मय हो जाता। रात-दिन एक ही प्रश्न

सुलझाने में लीन रहता। वास्तव में चित्रा मुझसे मुहब्बत करती है या नहीं। अगर मुहब्बत नहीं करती तो मेरे प्रति इतना ममत्व क्यों रखती है? तो क्या यह ममत्व छल-छद्म से भरा है?

पुनः विचारधारा पलट जाती—नहीं, नहीं, यह मेरी भूल है। चित्रा स्वच्छ भागीरथी की धारा है। उसमें इन कीटाणुओं का नाम नहीं। पुनः द्विविधा आ जाती—पर जब ऐसी बात है तो वह मेरे विचारों पर सहमत क्यों नहीं होती।

इतने बड़े-बड़े दिन, इतनी बड़ी-बड़ी रातें न जाने कितनी बार आईं और चली गईं किन्तु वह अपने हृदयगत विचारों की द्विविधा न तय कर सका। जीवन एक विचित्र पहेली बन गया जिसका वह स्वयं अनुभव न कर सका। घर के कोने में चुपचाप पड़ा न जाने क्या सोचता—आज इस उपाय से पूछूंगा...आज उस उपाय से। नहीं, साफ-साफ शब्दों में पूछूंगा....बिना पूछे यह प्रश्न हल नहीं हो सकता।

किन्तु जब कभी वह चित्रा के समक्ष जाता, अपनी समस्त भूमिका-भूल वह उसकी सलोनी मूर्ति देखने में तन्मय हो जाता। प्यासे ही को शीतलता का अनुभव होता है और वह छक-छककर पीने लगता है। ठीक यही दशा जीवन की थी। उसे देखते ही वह माधुर्य के हाथों का खिलौना बन जाता और कल्पना के सुनहले झूले में झूलने लगता।

अब से पहले उसका जीवन इस प्रकार की एक पहेली बन गया था जिसे वह अधिक समय तक न सुलझा सका था।

किन्तु आज कमरे में पहुँचते ही चित्रा ने जीवन को जिस वेदना भरी दृष्टि से देखा, उससे उसकी पहेली निमिष मात्र में हल हो गई।

उसके अर्द्धविकसित नेत्र इस भांति झांक रहे थे मानो वे कह

रहे हों— "जीवन ! तुम अपना हृदय क्यों इतना क्षुब्ध किये हो ? मैं मानती हूं, पिताजी ने हमें-तुम्हें अलग करने की व्यवस्था कर दी है किन्तु हम-तुम जो हैं वहीं होकर रहेंगे । देवतागण एकत्र हो अपनी समूची शक्ति द्वारा भी हमें-तुम्हें अलग नहीं कर सकते । हमारा तुम्हारा संबंध ही इतना घनिष्ठ है । यदि तुम चन्द्र हो तो मैं कमलिनी जो एकमात्र मयंक ही के प्रकाश में प्रकाशित हो सकती है । तुम दिवाकर हो तो मैं उसमें प्रस्फुटित होनेवाली किरण राशि हूं ।"

दूसरे ही क्षण चित्रा ने विषाद की छाया धारण किये हुए जीवन के रतनारे नेत्रों की ओर देखा, मानो वे कह रहे हों—

"चित्रा ! यह है किस्मत की घोर बदनसीबी कि हम तुम मिलकर जुदा हो रहे हैं । ओफ् ! नियति की यह कैसी विचित्र विडम्बना है । चित्रा ! तुम....तुम....मुझे भूल जाओ, सोच लो यह मिलन एक स्वप्न था । नियति ने हम दोनों को बनाया है तड़पने के लिए ।" दूसरे ही क्षण उसके नेत्र छलक गये मानों वे कह रहे हों—"नहीं जीवन ! ऐसा सोचना तुम्हारी भूल है । हमारा-तुम्हारा मिलन सच है और सच होकर रहेगा । भविष्य में देख लेना हम तुम मरकर भी अमर रहेंगे और दुनिया में एक अमिट छाप छोड़ जायेंगे ।"

"चित्रा ! आज मेरी तुमसे अन्तिम मुलाकात है । अब शायद इस जीवन में हमारी-तुम्हारी भेंट न हो सकेगी ।" बड़ी मुश्किल से जीवन ने कहा, पुनः उसके हृदय का बांध टूट गया ।

चित्रा शान्त थी ।

"आज तक हम तुम साथ रहते हुए कभी नहीं सोचे कि इतना शीघ्र हमारा-तुम्हारा बिछोह हो जायगा । इसमें किसी का दोष नहीं सब मेरे भाग्य का दोष है चित्रा ! आज तक मेरा तुम पर एक तरह का अधिकार था, किन्तु आज के परे कल से तुम दूसरे की

हो जाओगी। तब तुम्हारी दुनिया एक दूसरी ही दुनिया होगी। अगर दैव संयोग से कभी हमारी तुमसे भेंट हो जायगी तो नवीन रूप से, एक विचित्र वेश से। उस अवस्था में इतनी स्वच्छता, इतना माधुर्य, इतना प्रेम का सत्व स्वरूप शायद नहीं हो सकेगा। चित्रा, उस समय स्मृतियाँ एकमात्र स्वप्न-सी और मिलन एक पथिक का मिलन होगा। हमारे बीच यह एक विशाल परिवर्तन होगा।"

चित्रा के नेत्रों से आँसु की बूदें ढलक पड़ीं–"नहीं-नहीं जीवन, ऐसा नहीं हो सकता, मैं तुम्हारे हृदयगत विचारों से पूर्ण परिचित हूँ। परन्तु हम दोनों ने....जिसके कारण हम दोनों पास रहते हुए भी नहीं मिल सकते थे, इसमें मेरा....सब कुछ अपराध अन्धे समा-वादियों का है। इसी कारण आज दिन भी न जाने कितने भारतीयों का जीवन जल-जल कर क्षार हो रहा है, विषादमय हो रहा है।

हमारे दिल में तुम्हारे प्रति एक विशेष प्रकार की श्रद्धा....एक विशेष प्रकार का प्रेम था। तुमने भी अपने हृदयगत विचारों को कई बार एक गूढ़ समस्या रूप में मेरे समक्ष रखा। मैंने सभी का आदर-सत्कार किया किन्तु उसे अब तक....

इसका कारण था। मैं अपने तईं किसी का जीवन भ्रमपूर्ण नहीं बनाना चाहती थी किन्तु आज की व्यथा, आज की जलन से मेरे हृदय का बाँध टूट गया। जीवन! अब हम दोनों के बीच चक्कर लेकर बहने वाली नदी की परवाह नहीं। तुम्हारे लिए इस मत्सरमय विश्व को मैं निश्चय छोड़ दूँगी। इन मायिक सम्बन्ध समग्रह को तोड़ दूँगी, इस कठोरता और नीरसता से भरी हुई व्यवस्था में आग लगा दूँगी।"

चित्रा की बातों ने जीवन के हृदय में एक विचित्र-सी लौ फूंक दी। वह सोचने लगा—ओफ्, कितना कठोर नियन्त्रण है

समाज का। इसी के कारण आज उसकी समस्त अभिलाषाओं की आहुति हो रही है। उसका हृदय दलित हो रहा है। इसी कारण उसका जीवन विध्वंस हो रहा है।

सोचते ही सोचते उसके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। अनायास मुँह से निकल गया—"वाह, वाह रे संगदिल समाज! तू कितना निर्दय, कितना कठोर है। तेरी व्यवस्था कितनी पाषाण है। एक ही स्थान पर रहते हुए परस्पर दो प्राणियों का स्वच्छ प्रेम तेरे के लिए सह्य नहीं। चाहे वे दोनों तड़प-तड़प कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दें पर मिलन न हो।

क्या इसीलिए कि एक दीन-दरिद्र दर-दर की ठोकरें खाने वाला कंगाल और दूसरी वैभवशालिनी है। किन्तु तू यह नहीं सोचता, प्रेम से और वैभव से क्या सम्बन्ध? ओफ चित्रा! कितनी कठोरता से निर्मित है यह समाज-वेदी....कितने वज्र हृदय रहे हैं इस वेदी के पुजारी? तड़पते हुए लोगों के आर्तनाद कानों के पर्दे चीर डालते हैं किन्तु उन समाजवादियों के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती....उफ्!"

एक वेदनात्मक आह लेते हुए वह पुनः बोला—"चित्रा, मैं सर्वथा अभागा हूँ। कितना आनन्द था उस समय जब कि मैं तुमसे किसी भी विषय पर वाद-विवाद करता था, परन्तु अब किससे बातें होंगी, किसके समक्ष हृदयगत भाव व्यक्त करूँगा?"

दोनों के नेत्रों से आँसु की बूँदें बह निकलीं, उन बूँदों में क्या था, यह दोनों का हृदय ही जाने।

"तो अब मैं चलूँ चित्रा...." जीवन ने रुँधते कण्ठ से कहा।

चित्रा उसके चरणों पर गिर पड़ी और बोली—"यदि भूल से कोई खता हुई तो उसे क्षमा करना।"

जीवन का हृदय पिघला जा रहा था। इस समय उसके लिए

यावत जगत सो रहा था। उसकी जीवन-नैया प्रतिकूल धारा में बहने जा रही थी। जीवन-साथी बिछुड़ा जा रहा था।

"फिर मिलेंगे त्रिशा!" कहकर हृदय में अमिट वेदना लिए वह चल दिया।

× × ×

हवा सन्-सन् कर चल रही थी। पेड़ों के पत्ते हरहरा रहे थे। सूर्यदेव पश्चिम दिशा में अस्त हो रहे थे। वह अन्यमनस्क भाव से चल रहा था। स्वयं उसे मालूम न था उसकी मंजिल कहाँ है? कितना वह आया और कितना शेष है। वृक्ष-पल्लव हर-हर शब्द से उसका मजाक उठा रहे थे। पूछ रहे थे—ओ उद्भ्रान्त पथिक! सन्ध्या समय तू कहाँ जा रहा है?

× × ×

वृक्षों पर चहचहाती चिड़ियाँ कह रही थीं—'ओ पथिक! ठहर जा....हाँ, ठहर जा....कहाँ जा रहा है...देखता नहीं, आगे कितना घना अँधेरा जङ्गल है....उसमें पहुँचते ही हिंसक जीव तुझे खा जायेंगे।

× × ×

अस्तप्राय: सूर्य की सुनहली किरणें उदीप्त हो पूछती थीं—कहाँ जा रहा है....अपने घर जा। देखता नहीं, पृथ्वी से सुदूर क्षितिज के पास तक भयानक अँधियारी घिरी आ रही है।

काक भी अपने कठोर स्वर में पूछ बैठा—क्या तेरे घर-द्वार

नहीं है, तेरा कोई बसेरा नहीं है, जो तू सन्ध्या समय जंगलों की ओर जा रहा है ?

× × ×

नीड़ों की ओर लौटते हुए चरवाहों में से कोई तीव्र स्वर चिल्ला उठा—

"उजड़ गई जब कि मेरी दुनिया होते ही आबाद"

उसके हृदय में हाहाकार मचा हुआ था। क्या करे? कहाँ जाय? आँखों के सामने अंधेरा व्याप्त था। बसेरा लेती चिड़ियाँ अब भी कह रही थीं—जा तू चला जा अपने घर की ओर, अपनी धुन में तन्मय। कोने-कोने से अब भी आवाज गूँज रही थी—

"उजड़ गई जब कि मेरी दुनिया होते ही आबाद"

• •

मदोन्मत यौवन का स्पर्श होते ही मनुष्य उसकी मादकता के वशीभूत हो स्वयं को आशा, उन्माद और माधुर्य के हाथों बिक्रय कर देता है। दूसरे शब्दों में वह उसके हाथों का खिलौना बन जाता है। उसका काल्पनिक संसार हरितमय हो जाता है। हृदय में एक विचित्र प्रकार की मादकता छा जाती है। कल्पना के झूले पर झूलने लगता है। अरमानों की ईंटों द्वारा एक नवीन रूप की दुनिया से निराला महल बनाने लगता है। उसमें एक नवीन स्फूर्ति का वेग, एक नवीन उद्वेग का उल्लास बरस पड़ता है। नेत्रों के अन्तिम छोर पर स्थित आशा महल को वह दूर ही से ललचाई दृष्टि से देखता है। ध्यान में निमग्न हो वह प्रेम का

सुन्दर राग अलापने लगता है। उसके नेत्रों के समक्ष सौन्दर्य प्रतिमा कल्लोल करने लगती है जिसे देखकर वह पुकार उठता है—

"मैं....मैं तुमसे प्रेम करता हूं।"

यह प्रेम उसके आशा महल में आग लगा देता है जिसमें उसके सारे अरमान जलकर भस्म हो जाते हैं। स्वयं उसकी आत्मा का बलिदान हो जाता है। फिर भी हृदय के अन्दर प्रज्वलित अग्नि धू-धू कर जलती रहती है। इसी कारण वह एक उन्मत्त का रूप धारण कर लेता है। अपना समस्त वैभव त्यजित कर दर-दर की ठोकरें खाने लगता है। जिसे देख यावत संसार हँसता है और कहता है पागल है पागल।

ठीक यही दशा इस समय जीवन की हो रही थी। उसके हृदय में एक विचित्र वियोग ज्वाला धधक रही थी, जिसकी लपटें नेत्रों से निकल रही थीं। उसने उसे न जाने कितने उपायों द्वारा शान्त करना चाहा, किन्तु बेकार....

वह चित्रा को जितना ही भूलने की कोशिश करता, उतना ही उसके ध्यान में तन्मय हो जाता। अब उसे अनुभव हो रहा था—वियोग वह्नि के पर्दे में कितनी जलन निहित है।

उसका काल्पनिक संसार जलकर राख हो रहा था। वह एक उन्मत्त पागल की भांति, दीवाने की भांति गावों की ओर भागता हुआ धूल-धूसरित कच्ची सड़क पर चला जा रहा था। सूर्यदेव पश्चिमी पयोदमुखी के पथ में विश्राम हेतु पूर्व की ओर से चले जा रहे थे। अवनीतल पर उजेला उदीप्त करते, बक्राकार चन्द्रमा निखर रहा था। चिड़ियाँ तीव्रता से पंख फैलाये नीड़ों की ओर चली जा रही थीं। संसार पर एक विचित्र स्पन्दन-सा छाया था। वह चलते-चलते एक वाटिका के समक्ष पहुँचा। सुगन्ध से सनी

मन्द पवन के स्पर्श से उसकी जलन किञ्चित शांत हो सकी। तत्क्षण वह एक दिव्य स्थान पर बैठ वायु-सेवन करने लगा।

× × ×

एकाएक उसकी दृष्टि खुल गई। उसने देखा स्वर्गलोक-सा दिव्य आलोकित कमरा, भयावह और नीरस प्रतीत हो रहा था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे चारों ओर अग्नि लगी है और उसमें समस्त वस्तुएं जल-जल कर क्षार हो रही हैं। वह असह्य पीड़ा से कराह उठी। मुंह से निकल पड़ा—ओफ, व्यथा....असह्य व्यथा !

जीवन की याद उसे सतत जला रही थी। भयानक वियोग-व्यथा से वह छटपटाने लगी। मुख से गर्म श्वांस निकल रही थी। असह्य गर्मी से व्याकुल हो कमरे के बाहर आ नीले आकाश की ओर दौड़ने लगी। उसे दुनिया बिलकुल बदली-सी प्रतीत होने लगी।

अनायास कह पड़ी—"उफ् ! परिवर्तन....घोर ! एकाएक हृदय-गति बदल गई....हम दोनों निर्विघ्न रूप से मिल सकते थे।"

सहसा वह समय नेत्रों के समक्ष आ गया, उसकी आंखें मुंद गईं और पुनः वह कल्पना की सुखद गलियों में घूमने लगी। हवा का एक झोंका आया और उसे पृथ्वी से उड़ा ले गया दिव्य लोक में। वहां उसने दूर जंगल में एक टिमटिमाती तारिका पकड़ ली और उसे हृदय ज्योति बना घूमने लगी। दूसरे ही क्षण वह आलोक बादलों की ओट में हो गया। अगम पीड़ा से व्याकुल हो नेत्रोन्मिलन हो गया। समस्त दृश्य लोप हो गए। तत्क्षण दृष्टि ऊपर की ओर उठ गई।

उसने देखा, अनन्त आकाश की ओर....स्निग्ध चन्द्रिका और

कलानिधि की मन्द मुस्कान के गर्भस्थ आकाश गङ्गा !

"यदि मनुष्य उसमें बह जाय तो क्या हो ?...." अज्ञात भाव दिल में उत्पन्न हुआ। ठीक उसी समय एक टिमटिमाता तारा टूट पड़ा भूमण्डल की ओर। तारिकाओं की कतारें किञ्चित विचलित हो गयीं।

ओह ! कितनी निष्ठुर हैं ये तारिकायें, हृदय में भाव उत्पन्न हुआ और विलीन भी। तत्क्षण विरह वेदना भी वहन कर लीं। थोड़ी देर भी न हो पाई कि इनका सब कुछ समाप्त हो गया। अपनी भावना द्वारा मूक भाषा में वह लज्जित करने लगी उन तारिकाओं को। किन्तु तारिकाओं ने मूक भाषा में कहने वाली विभा की ओर तनिक ध्यान न दिया। शायद वे अपने को उससे ऊपर....संसार से ऊपर समझती थीं। इसी गर्व से वे इठला रही थीं। एतदर्थ तारिकाओं की व्यंगात्मक हँसी उसे काल-सी निष्ठुर एवं निर्मम प्रतीत हुई। अब और अधिक वहाँ न रह सकी। हृदय में न जाने कौन-सी उमङ्ग छा गई। वह जीवन के प्रकोष्ठ में आ विस्फारित नयना हो देखने लगी।

उसने देखा, चतुर्दिक देखा किन्तु सब शून्य। हृदय को देखा, वह भी शून्य। अज्ञात भाव बिजली की भाँति हृदय में छा गया, ओफ्, संसार ही शून्य है।

घर-द्वार, धन-दौलत सब कुछ वही है। केवल एक अपरिचित के आ जाने से उसमें कुछ विशेषता आ गई थी किन्तु उसके जाते ही वह विशेषता भी नष्ट हो गई।

वह तो पराया था, फिर ऐसा क्यों हुआ ? पुनः विचारधारा पलट गई। पराया कैसे था ? वही तो मेरा सर्वस्व था। बिना जीवन के सब कुछ शून्य है। ओफ् ! वे कहाँ होंगे और मैं कहाँ

है। हा देव ! थोड़ी ही देर में इतना उलट-फेर। वह फूट-फूट कर रोने लगी।

"मैं स्वच्छन्द हरिणी की भाँति पिताजी के स्नेह-सिंचित उद्यान में कल्लोल करती थी। मृगराज तुमने आकर मुझे प्रेम में डुबोया। लौट आओ, लौट आओ प्राण !"

किन्तु वहाँ कौन बैठा था जो उसकी पुकार सुनता। नीरव रजनी सायं-सायं कर रही थी। हृदय में हाहाकार छाया था।

ओफ् ! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? हृदय की जलन, पीड़ा, व्यथा शान्त हो सके। इस संसार में सभी के जीवन का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है, फिर मेरा क्यों नहीं ? क्या मेरा जीवन उद्देश्यहीन है।"

नीरव गृह, नीरव प्रकृति, स्वप्न निद्रा में लीन संसार, फिर उसकी बातों का उत्तर कौन देता ? केवल दीवार पर टँगी घड़ी की सुईयाँ, छोटे-छोटे खानों को पार करती हुई जीवन की क्षणभंगुरता का अनुमान करा रही थीं। जीवन में क्षणिक माया दिखा रही थीं। टिक-टिक शब्दों द्वारा उसकी व्यथा की समवेदना प्रकट कर रही थीं। कह रही थीं—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है चित्रा ! तेरे जीवन का उद्देश्य है। क्यों हताश हो रही है। संसार में किसी का जीवन उद्देश्यहीन नहीं है।

ठीक उसी समय उसने निश्चित कर लिया—पिताजी ने उन्हें अन्धे निष्ठुर समाज के कारण बहिष्कृत कर दिया किन्तु मैं खोजूँगी....हाँ खोजूँगी। अपने जीवन की बलि देकर उन्हें प्राप्त करूँगी। पर हाय, दर्शन होंगे या नहीं, कौन जाने। जीवन प्रदीप ! मैं नितान्त हतभागिनी हूँ।"

निर्बल असहाय कुक्कुरी की भाँति वह शैया पर गिर पड़ी।

गिरते-गिरते उसने सुना, अर्द्ध रात्रि की बोली, सर्वत्र नीरवता छाई हुई थी। शान्ति के साम्राज्य को उद्‌भासित करता हुआ कोई गाता चला आ रहा था—"बिछुड़े हुए मिलेंगे ईश्वर ने गर मिलाया।"

एक धड़ाके साथ दरवाजा खुल गया। कमरे में प्रवेश करते ही पिताजी ने कहा—"चित्रा ! अर्द्ध रात्रि होने पर भी तुम्हारी आँखों में नींद नहीं।"

× × ×

जीवन के जाते ही पिताजी का क्रोध शान्त हो गया। उनकी आत्मा कोसने लगी—वीरन ! वीरन ! यह बुरा किया तुमने ! इन अन्धे धर्म के ठेकेदारों के बहकावे में पड़ कर तुम्हारी बुद्धि उन्मत्त हो गई। ढोंग रचनेवाले पाखण्डियों के अत्याचारपूर्ण कर्मों को अभी तुमने नहीं देखा।

इतने पाण्डित्य का प्रदर्शन करनेवाले समाजवादियों के अतीत का चरित्र-चित्र देखो...आँखें खुल जायँगी। जो दूसरे का जीवन बर्बाद कर रहे हैं, जिनके कारण न जाने कितनी ललनाओं का जीवन जल-जलकर राख हो रहा है और दुख से दया-दया चिल्ला रही हैं, जरा उन विधवाओं, हिन्दू ललनाओं का निरीक्षण करो ? कलेजा मुँह को आ जायगा। उस समय तुम्हें मालूम होगा—बेशक यह समाज कितना सङ्गदिल है। भारत में वेश्याओं की संख्या इतनी अधिक होती जा रही है, क्यों ? इसका क्या कारण है ? कभी तुमने सोचा है। इन समाजवादियों से पूछा है—'क्या कारण है ?' नहीं, इसका प्रधान कारण है समाज की कठोरता, उसकी भयंकर संगदिली।

इसके प्रधान-नियन्ता हैं यही समाजवादी, जो लम्बी टीका लगाये-फिरते हैं और अपने को कट्टर सनातनधर्मी कहते हैं। जो एक अछूत के स्पर्श-मात्र से घृणा करते हैं, किन्तु एकान्त में चुपके चुपके रात्रि के बारह बजे के बाद वेश्याओं के, अपने से बहिष्कृत कर स्वयं बनाई गई वेश्याओं के पैर दबाते हैं और अपनी काम-पिपासा शान्त करते हैं। यह कितने शर्म की बात है। फिर भी तू नहीं चेता और अपनी प्राणों से प्रिय बेटी चित्रा का जीवन कालिमायुक्त बना दिया....और न जाने क्या-क्या....उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें कोसा। उनके हृदय में सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो गया और वे चित्तवृत्ति न रोक तत्क्षण चित्रा के प्रकोष्ठ की ओर बढ़ गये।

× × ×

"वेगवती सरिता के प्रबल वेग से तटवर्ती भूमि फट जाती है। तेज वायु के वेग से वृक्ष समूह धराशायी हो जाते हैं और बूंद-बूंद टपकने से घड़ा रिक्त हो जाता है। उसी भाँति चिन्ता करने से शरीर भस्म हो जाता है। इसी कारण चिन्ता करना अच्छा नहीं है चित्रा! एक ऐसे व्यक्ति के लिए जिसका कोई ठिकाना न हो, न जाने कितने गृहों के जूठन को खाया हो, जिसके वंश का पता नहीं, जिसको ऐसे स्थान पर रहने की आवश्यकता नहीं उसके लिए चिन्ता कर शरीर जलाना बेकार है चित्रा!"

चित्रा ने तनिक दृष्टि उठाकर देखा, पिताजी खड़े सात्वना दे रहे हैं। पुनः आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल पड़ी।

समवेदना की सहानुभूति अक्षय और पवित्र होती है। पिता के सान्त्वना भरे शब्द उसके अशान्त हृदय में शान्ति न स्थापित

कर सकें, इसके विपरीत पिताजी भी उसी बहाव में बह गये। फिर भी हृदय शान्त कर वे उसे समझाने लगे।

किन्तु यह उनकी गहरी भूल थी।

• •

आलोक एक लम्पट और व्यभिचारी व्यक्ति था। दुनिया में कोई ऐसा पाप नहीं था जो आलोक ने न किया हो। कोई ऐसा शौक न था जिसका प्रयोग उसने न किया हो। इसलिए कि वह एक वैभवशाली पिता का पुत्र था।

वही आलोक सन्ध्या समय उद्यान के मध्य भाग में पुष्प परागों का बास ले रहा था और धीरे-धीरे टहल रहा था।

अस्तप्रायः सूर्य की सुनहली किरणें उद्यान में कल्लोल कर रही थीं। दूर क्षितिज पर लालिमा व्याप्त थी मानों संध्या सौभाग्य सिन्दूर धारण कर गर्व से मुस्करा रही हो! वाटिका के उस पार झुरमुट से दूर कोई प्राणी गाता जा रहा था—

"जीवन है बस दो दिन का...."

आलोक प्रकृति-सौंदर्य देखने में व्यस्त था। इतने में ही उसकी चंचल दृष्टि उठ गई। उसने दूर उद्यान के छोर पर एक नवयुवती को देखा। अनायास मुँह से निकल पड़ा—'अहो सनम! तुम आ गई।'

दिल में सोचा, अच्छा इधर ही तो आ रही है। आज इसे अवश्य छकाऊँगा। रास्ता वही था, चुपचाप कुन्ज की ओट में हो गया।

सनम भोली-भाली एक ग्रामीण कन्या थी। उसका रूप-रंग

देव ने ऐसा बनाया था कि देखते ही लोग उन्मत्त हो जाते थे। फिर आलोक की क्या हस्ती। वह तो सौन्दर्य-प्रतिमा रौंदने का ही आदी था। निकटवर्ती गांव में ही उसका मकान था। प्रायः सनम सन्ध्या समय इसी उद्यान से कुछ नित्य ले जाया करती थी। कभी दो-चार फूल ही, कभी दो चार फल ही।

आज भी वह एक चंगेरी में दो-चार सेव लिए घर की ओर लौट रही थी। उसे क्या मालूम शैतान छिपा हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

ज्योंही वह लताकुन्ज के सामने पहुँची आलोक निकल पड़ा। उसकी आँखों से वासनामयी चिनगारियों की बू निकल रही थी। वह पूर्ण मदान्ध हो रहा था।

छर....छर....सब सेव जमीन पर गिर पड़े। ह-ह-ह-कर आलोक हँसने लगा।

नवयुवती गुस्से से तिलमिला गई और चट....पट....दो तमाचे आलोक के चेहरे पर लगाती हुई बोली—"बेवकूफ.... तुझे शर्म नहीं लगती ?"

"माफ करो सनम ! गलती हो गई।" मुस्कुराते हुए आलोक ने कहा और तत्क्षण सनम का मुख चूम लिया।

सनम आपे के बाहर हो गई और—"उल्लू के बच्चे" तथा न जाने क्या क्या कहती हुई तड़ातड़ तमाचे जमाने लगी।

आलोक तनिक न शर्माया—"लो मार लो।"

दूसरे ही क्षण वह उसे अपने अंकपाश में आबद्ध कर चूमना चाहा था कि भक से एक पत्थर का चौकोर टुकड़ा उसके सिर पर आ लगा।

एकबारगी चोट से उसका सिर फट गया और वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

"अच्छा हुआ...मर जा?"

अनायास सनम के मुँह से निकल पड़ा।

"किसने मुझे पत्थर मारा?" भूलुण्ठित आलोक ने कहा।

"मैंने...." कहते हुए एक नवयुवक ने दोनों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, जो अभी-अभी लताकुन्ज से निकला था।

"बेवकूफ जीवन, तूने?" आलोक ने तिलमिला कर कहा।

"हाँ मैंने..." कहते हुए उस नवयुवक ने दो-चार घूँसे और चलाये। फिर बोला—"निष्ठुर....दुराचारी!...किसी अबला पर बलात्कार करते तुझे शर्म नहीं आई? ऐसे व्यक्तियों की यही सजा है....क्यों आया ख्याल में?"

"क्या तू मुझे नहीं जानता जीवन! आज पहली बार तूने मेरा अपमान किया है। क्या तेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई?..."

"बेशक, मेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई। क्या तू भूल गया अपनी ढिठाई। याद कर....चित्रा की कहानी?"

दूसरे ही क्षण वह नवयुवक सनम की ओर घूम पड़ा, जो कृतज्ञता से दबी जा रही थी और सोच रही थी—

"चित्रा की कहानी...."

कौन चित्रा? कैसी कहानी?

× × ×

"धन्यवाद! मैं आपके व्यवहारों से अत्यधिक खुश हूँ। मुझे कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए उचित शब्द नहीं मिल रहे हैं।" तनिक लजाते हुए सनम बोली।

सनम ने बहुत कुछ पूछा किन्तु उसने किसी भी प्रश्न का जवाब न दे केवल अपना परिचय यही दिया—"मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जिसके न घर और द्वार, न माँ और बाप।"

"आखिर आप जा कहाँ रहे हैं?" सनम ने पूछा।

नवयुवक शान्त।

"आप मेरे गरीबखाने पर चलिए।" सनम ने कहा और बहुत अनुरोध किया किन्तु वह नहीं गया।

उसे किसी के यहाँ जाने से घृणा-सी हो गयी थी। दूसरे ही क्षण सनम ने एक चाँदी-सा दमकता सिक्का नवयुवक के हाथों पर रख दिया। राकाशशि की किरणें उसके हाथों पर गयीं और वह चमचमा गया।

"नहीं सनम! इसे मैं नहीं लूँगा। तुम मुझे सोलह आने में खरीदने की कोशिश न करो। संसार में अभी मैं इतना भाग्यवान् नहीं।"

दूसरे ही क्षण सनम सलाम कर उद्यान से बाहर जाने लगी।

घायल आलोक अब भी पड़ा कराह रहा था। जीवन एक उपेक्षा की दृष्टि उस पर निपातित करता हुआ वाटिका के बाहर आ पुनः अपनी उस मञ्जिल पर चलने लगा जिसका अन्त नहीं था।

× × ×

मानस पटल में जब कोई खलबली मची रहती है तो बुद्धि एक-सी स्थिर नहीं रहती। वह इस डाल से उस डाल पर फुदकते हुए विहंगों की भाँति उछलती रहती है।

अर्धरात्रि की नीरवता में रजतमय जगत का अवलोकन कर ठीक यही दशा चित्रा की हो रही थी।

समस्त जगत को शीतलता से आह्लादित करने वाला राकेश उसे प्रज्वलित चिता की भाँति प्रतीत हुआ। उसकी प्रस्फुटित किरणें अग्नि से भी तीव्र बोध होने लगीं। इसलिए कि वह एक विरहिणी नायिका थी।

हँसते हुए चन्द्र की निठुरता वह न देख सकी। शैया पर आ सोचने लगी—"उफ् इतनी व्यथा, इतनी पीड़ा, मैंने नाहक बुलाया उस वेदना को जिसे स्वयं नहीं सह सकती थी। उस असहनीय तीव्र ज्वाला से भरी विरहाग्नि को नाहक मैंने धारण किया! हा दैव। अब मैं क्या करूँ! हाँ याद आया....मैं भूल गई थी। कितना अच्छा उपाय है! छोड़ दूँ इस मस्तरमय विश्व को, तोड़ दूँ इन मायिक सम्बन्ध समूह को। रमा लूँ तन पर पर फकीरी और विश्व के कोने-कोने में ढूढ़ूँ तो क्या वे न मिलेंगे?

जरूर मिलेंगे। न जाने कौन-सी शक्ति कह रही है....बिछुड़े हुए जगत के दो प्राणी....मिलेंगे, जरूर मिलेंगे। परिश्रम का फल सदैव मीठा होता है—

"जिन खोजा तिन पाइयाँ"

मुझसे बड़ी भूल हो गई, मैंने पूछा नहीं कहाँ जायेंगे। अच्छा था, यदि साथ ही मैं चली गई होती।

हा प्राण! तू भी निष्ठुर बन गया उस समय। तू क्यों नहीं उड़ गया, यह भौतिक पिंजड़ा तोड़कर। किन्तु समाज, उँह उसकी क्या परवाह! वह हँसे या रोये मैं प्राणों की हार-जीत करूँगी। यदि इस बीच मर गई तो भी ठीक है! इस व्यथा से रहित हो जाऊँगी तथा सदैव आकाश-मण्डल में स्थित हो, उदीयमान तारे की भाँति उज्ज्वल हो, जगत की लीला निरीक्षण करूँगी और देखूँगी इन समाजवादियों की दशा।

तत्क्षण आँखें मूँद हाथ उठा उसने कहा—
मुझमें वह शक्ति प्रदान करो जिससे मैं अपना प्रेम निभा सकूँ।"

× × ×

कलम उठा वह न जाने क्या लिखने लगी।

खिड़की से झाँककर उसने देखा, राकेश-प्रताप से चमाचम दिशायें चमक रही थीं। समस्त ग्राम एकांकी हो रहा था। वे प्रेम की सौ-सौ भुजायें धारण किये उसे पकड़ने आ रही हैं। उसने सोचा—हैं, यह कैसा बन्धन! आँखें फाड़कर देखा तो कुछ नहीं।

ठीक इसी समय उसे ऐसा मोह सताया कि वह फूट-फूट कर रोने लगी।

यह मनस्वी स्वभाव है। जब कोई व्यक्ति अपनी जन्मभूमि सदैव के लिए त्यजित करने लगता है, उस समय उसे एक प्रकार का दैविक मोह दुखित करता है, चाहे वह पुण्यात्मा हो या पापात्मा, उसे समस्त वस्तुएं नवीन रूप धारण कर विकल करने लगती हैं।

ठीक यही दशा चित्रा की थी। कमरे की समस्त वस्तुएं उसे समझा रही थीं। अनायास वह बोल उठी—'छूट जायगा...आज सब कुछ छूट जायगा। तब तो इसके बदले जो सौदा मैं ले रही हूं वह बड़ा ही अमूल्य है।'

तत्क्षण कल्पना के बहाव में उसने देखा, नदी के उस पार से प्रेमी खड़ा बुला रहा है। वह कह रही है—"खड़े रहो...खड़े रहो....मैं आ रही हूं।"

उसी भाव में वह घर से निकल पड़ी।

"पिताजी, हे धरती माँ, मुझे क्षमा करना।" कहते-कहते

वह दूसरे ही क्षण गृह-मन्दिर से चली गई। केवल शेष रह गया उसका काल्पनिक रूप।

अर्द्धरात्रि में किसी ने न पूछा —"तू जा कहाँ रही है?"

कागज शैया पर पड़ा फड़फड़ा रहा था। घड़ी की सुईयाँ अब भी छोटे-छोटे खानों को पार कर रही थीं।

× × ×

ममताधिक्य के कारण बाबूजी ऊषाकाल से पहले ही उठे और चित्रा के प्रकोष्ठ की ओर बढ़ चले।

जाते समय उसने दरवाजा खुला ही छोड़ दिया था। देखते ही बाबूजी के पैरों तले की जमीन खिसक गई। बिजली की तरह भाव पैदा हुआ—"वह नहीं है....क्या भाग गई?"

तत्क्षण कमरे में जा देखा, वास्तव में कमरा शून्य था। चित्रा की छाया भी नहीं थी। वे व्याकुल हो गये। सन्तान का प्रेम उमड़ आया और फूट-फूटकर रोने लगे।

उनकी दृष्टि शैया पर पड़े कागज पर गई। उन्होंने उसे उठा लिया। देखा, वह कागज नहीं एक चिट्ठी थी जिसे जाते समय चित्रा ने रख दिया था। वे लम्बी दृष्टि से पढ़ने लगे।

× × ×

पूज्य पिता जी!

चलते समय मैं आपके साथ गहरा विश्वासघात कर रही हूँ। मेरे हृदय की ज्वाला सिवाय इसके किसी भाँति भी शान्त न हो सकती थी। लाचार मुझे ऐसा करने पर तत्पर होना पड़ा।

किन्तु अपने हृदयगत विचारों को स्पष्ट बताये बिना मैं जा

जा नहीं सकती थी। मायिक बन्धन मुझे ऐसा करने पर बाध्य करता है। प्रेम की अधिकता के कारण मैं निमिष-मात्र यहाँ ठहर भी नहीं सकती हूँ।

मुझे हार्दिक शोक है पिताजी, मैं आपके सहवास में रहकर भी राहे-राहत पर न आ सकी।

पिताजी ! प्रीति का दुःख अपार होता है। इसकी व्याख्या हेतु मुझे इस समय उचित शब्द नहीं मिल रहे हैं जो मैं अपने हृदयगत भाव व्यक्त कर सकूँ।

जिस समय मैं अबोध नन्हीं-सी बालिका थी, इन्द्राद्कुल पर घूमने गई थी। वहाँ भूख से तड़पते हुए उस अभागे को देखा। मुझे बड़ी व्यथा और उसके प्रति एक प्रकार की ममता उत्पन्न हो गई। उसी ममता के वशीभूत हो मैं कुछ न कुछ देने निश्यश: उसके पास जाने लगी। उसकी आँखों में न जाने कौन-सा आकर्षण निहित था, जिसने मुझे ....मैंने स्वयं को समर्पण कर दिया उस अभागे कंगले के हाथ, फिर मैं....

आज उसी के प्रेम-पाश में आबद्ध होकर मैं न जाने कहाँ जा रही हूँ। मेरा कोई निश्चित मार्ग नहीं है। मेरी मञ्जिल का अन्त नहीं, इस कारण इस जीवन में शायद मेरा आपका मिलन न हो सकेगा। आज मैं अपने समस्त हृदयगत विचार स्पष्ट-रूप से आपके समक्ष उद्धृत कर रही हूँ।

अब यहाँ से सुदूर परलोक में ही मेरा आपका मिलन होगा। किन्तु उसमें नितान्त परिवर्तन वर्तमान रहेगा। आप जायेंगे देवालय में देवताओं के साथ, इसलिए कि आप समाजवादी, सच्चे जातीय हितैषी हैं ! मैं घसीटी जाऊँगी परलोक स्थित रौरव नर्क में, इसलिए कि मैं पिशाचिनीशाला विधि का उल्लंघन करने वाली

अपराधिनी हूँ।

पिताजी! मेरी उन पर एक विचित्र किन्तु महान श्रद्धा थी। एक विचित्र प्रेम था। यदि उस प्रेम को "आदर्श प्रेम" के नाम से संबोधित किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। फिर भी मैं लाचार थी उसे बताने से। मेरे पास उसे व्यक्त करने हेतु वाक्य समूह न थे। जिनके द्वारा मैं आप को, धर्म को, समाज को समझा सकती।

मेरा प्रेम यावत- जगत को उद्दीप्त करने वाले मयंक की भाँति उज्जवल है। उसमें धर्म की कोई भी बात बाधा नहीं डाल सकती। एक तरह से ठीक ही हुआ पिताजी, मैंने आपसे नहीं कहा। क्योंकि धर्मान्धों को मेरी बात का तनिक भी विश्वास न होता। दुनिया नहीं समझ सकती है मेरे स्वच्छ प्रेम को....जिसमें अभी तक किसी प्रकार की कुत्सित भावना का धब्बा नहीं लग सका है। किन्तु दुनिया की बातें विचित्र हैं पिताजी! वह तो स्वयं आडम्बर पर चलने वाली हैं। उसे स्वयं तो आँख हैं नहीं, कान जरूर तेज हैं। उसी का यह प्रत्यक्ष प्रभाव है जिसके कारण आज मुझे यह सुनहला संसार छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा है।

संसार ही का दोष नहीं है पिताजी! मेरी भावना, मेरी अन्तरात्मा का भी दोष है। घर छोड़ने पर यावत जीवन मुझे आनन्द न प्राप्त होगा यह भी मैं जानती हूँ। मेरी भावनायें पूर्ण न हो सकेंगी। यों ही भटकते-भटकते जीवन बीत जायगा, फिर भी जीवन में न जाने कौन-सी शक्ति बोल रही है—"तुम जाओ ...तुम्हारा भविष्य बहुत ही...." इतने पर भी समझ लिया है, भगवान के राज्य में मैंने चोरी की है। इस कारण व्यर्थ का कलङ्क लगेगा। पहाड़ खोदने पर चुहिया ही हाथ लगेगी, किन्तु मुझे

सन्तोष है।

आनन्द ढूंढने मैं घर से जा रही हूं किन्तु बदले में प[ि]
ही प्राप्त होगा, यह मैं जानती हूं। सब कुछ जानते हुए भी ल[...]
हूं, प्रेम-संसार में मुझे कूदना ही है पिताजी !

मेरा दृढ़ निश्चय है, यदि समाज-नियम हेतु मुझे रौरव नरक में गिरना पड़ेगा तो गिरेंगे मेरे साथ-साथ समाज के वे दिग्गज नेता, जो नवयुवतियों को व्यर्थ कलंकित कर उनका भविष्य बर्बाद कर देते हैं। मैंने अपराध किया है, उसके प्रायश्चित स्वरूप तिल-तिल कर जलूंगी पर जलेंगे मेरे साथ-साथ शास्त्र के वे नियन्ता जिन्होंने ऐसे-ऐसे धर्म के नियम बनाये हैं, जिनके नाम पर नवयुवतियों का बलिदान हो रहा है।

पिताजी ! आप मुझे भूल जाने की चेष्टा करियेगा। चित्रा इस संसार से सदा के लिए चली गई। सम्भव है मर कर ही इस यातना से छुटकारा पा सकूं। किन्तु अपराध का प्रायश्चित निर्दिष्ट है। इस कारण मर कर भी छुटकारा नहीं पा सकती। फिर मैं क्या करूं ? अब तो जो हो गया वह वापस नहीं आ सकता। अपने किये का फल भुगतूंगी ! चिन्ता क्यों करूं। जब कूद पड़ी तो गहराई का अन्दाज लगाने से फायदा....

धर्म को मैं लात मार दी। यदि वह मुझे अग्निकुण्ड में होम कर दे तो क्या अनुचित। समाज पर मैंने पदाघात किया है, शास्त्र का कानून तोड़ा है। यदि फलस्वरूप कलंक कालिमा पोत आजन्म कारावास में ढकेल दे तो क्या आश्चर्य।

× × ×

पिताजी !

आप भूलकर भी मुझे खोजने की चेष्टा न करियेगा । मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक कहती हूं, मेरा मिलना अति दुष्कर है । बस, प्रणाम ···पिताजी...श.. त्...श....त्...प्रणाम....

अन्तिम पंक्ति पढ़ते-पढ़ते पत्र हाथ से छूट कर कमरे की फर्श पर गिर पड़ा ।

"हा बेटी ! तूने यह क्या कर डाला ।"

एक सर्द आह पिता के मुख से निकल पड़ी ।

"मैं नहीं जानता था चित्रा ! तेरा हृदय इतना स्वच्छ, इतना पवित्र है । अरे, निष्ठुर निर्मम समाज, जिस वेदना में मैं जलकर भस्म हो रहा हूं तू भी उसी में भस्म हो जा ।"

दूसरे ही क्षण पिताजी परकटे गिद्ध की भांति कक्ष में गिर पड़े ।

× × ×

ध्यान में लीन मन्थन गति से चित्रा चली जा रही थी । न आगे की सुध न पीछे का खटका । वह एक ऐसे पथ पर जा रही थी जिसका अन्त जनहीन भूभाग में होता था । क्या हुआ अगर वह एक जनहीन भूभाग था ? किन्तु कितना मुग्धकारी था वह वन्य-प्रदेश । भोर होते-होते वह अपनी जन्मभूमि से काफी दूर चली गई । उसने देखा, पूर्व ओर से सविताभ अपना रक्तवर्ण रूप धारण कर संसार को अन्धकार रहित कर रहे थे । ऊषाकाल का वह स्पर्श कितना मादकमय था । सविताभ को श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया, यावत जगत पर दृष्टि फैलाकर देखा, संसार एक अँगड़ाई लेकर उठ रहा था । मन्दिरों से घड़ियालों की ध्वनि आ रही थी । पक्षियां अपने नीड़ों से निकल वन्य प्रदेश की ओर दौड़ रही थीं ।

"नाना प्रकार के क्षुद्र जीवों को अपना जीवन इतना प्यारा है। ओफ्!" अनायास उसके मुख से निकल पड़ा।

• •

"ओफ्! कितने दिन व्यतीत हो गये मुझे कार्य की खोज करते किन्तु कहीं भी एक धेले का कार्य प्राप्त न हो सका। पास के सब पैसे समाप्त हो गये, अब किस प्रकार यह क्षुधा शान्त हो सकेगी, कौन-सा उपाय है।

उपाय, हाँ उपाय एक तो है, उपवास! किन्तु कितने दिन तक, दो-चार दिन। फिर वही समस्या उपस्थित होगी। हा दैव? क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?" मुँह से एक लम्बी श्वास लेते हुए नवयुवक बड़बड़ाया और थोड़ी ही दूर गया था कि पूरब की ओर खट-खट की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

इस बीहड़ प्रान्त में यह खट-खट की ध्वनि कैसी? इसका रहस्य समझना चाहिए। तत्क्षण नवयुवक अपनी राह छोड़ उसी ध्वनि के सहारे घूम पड़ा।

घने वृक्ष समूह को पार करते ही उसने देखा, एक विशाल वृक्ष के नीचे एक मोटा आदमी कुर्सी के सहारे बैठा था। जिसके सामने ही पहाड़ी सिलसिले पर न जाने कितने लोग पत्थर तोड़ रहे थे। उन्हीं की चलाई हथौड़ियों से खट-खट की आवाज निकल रही थी।

सामने ही दो-चार बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं, जिन पर अधिक संख्या में बालक और स्त्रियाँ वही छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े लाद रहे थे।

"आज मैं भले का मुंह देखकर उठा था...." अनायास नवयुवक के मुंह से निकल पड़ा। वह नीम के पेड़ तक बढ़ गया।

"क्या है ?"

"सरकार! मैं बहुत दिनों से....यदि कुछ!..." कांपते हुए नवयुवक ने कहा।

"कौन-सा कार्य करेगा....बोल ?"

"जिसके लिए आप हुक्म दें....मैं वही कर सकता हूं।"

"जा तू भी गाड़ी पर मिट्टी लाद ?

"बहुत अच्छा सरकार!" कहता हुआ नवयुवक श्रद्धा से नतमस्तक हो गया और समूह की ओर बढ़ने लगा।

"ठहरो...." कड़ी आवाज में पुकारा उसने।

तीव्र स्वर सुनते ही एक बार वह नवयुवक सिर से पांव तक कांप गया।

"तेरा नाम क्या है ?"

"जीवन !"

जेब से डायरी निकाल उस पर लिखते हुए उन्होंने कहा—
"जाओ ..."

तत्क्षण वह चला गया।

दिन भर कड़ा परिश्रम करने के बाद शाम को उसे दो आने पैसे मिले।

पैसा देते हुए उन्होंने कहा—"आज तुझे इतना ही मिलेगा। कल से पूरी मजदूरी दी जायगी।"

वह कुछ भी न बोला, पैसे ले आया। पास ही एक बुढ़िया की दूकान थी छोटी-सी...

छः पैसे का सत्तू लिया और खूब पेट भर खाया।

दिन भर घोर परिश्रम करता, बीच-बीच में न जाने कितने बार ठेकेदार साहब की गालियाँ सुनता, तब कहीं शाम को तीन आने उसे मिलते ।

बैल की तरह दिन भर परिश्रम करने पर निशिवासर सत्तू के भोजन तथा हृदय की व्यथा से वह धीरे-धीरे शिथिल होने लगा। कुछ दिनों में काम करने की ताकत क्षीण हो गई। अन्त में वह बीमार पड़ गया ।

एक हफ्ते के बाद उसकी आँखें खुलीं, पश्चिम की ओर लालिमा व्याप्त थी। पक्षियाँ कोलाहल कर रही थीं ! कोई दूर से गाता हुआ जा रहा था—

"उजड़ गई जबकि मेरी दुनिया होते ही आबाद।"

"हूँ ! कौन है ? कौन है यह ! इतना दर्दीला गीत गा रहा है। हा देव ! क्या यह भी मेरी तरह उन्मादी है ? यह भी मेरी तरह बदकिस्मत है ?"

गीत की आवाज से वह उठना चाहा, किन्तु उठ न सका। किसी प्रकार साहस करके उठा और धीरे-धीरे ठेकेदार साहब की गद्दी की ओर बढ़ने लगा। थोड़ी ही दूर गया था कि गिर पड़ा। कुछ देर बाद पुनः उठा और तब वहाँ गया।

उस समय वहाँ कोई न था, केवल ठेकेदार साहब बैठे न जाने क्या लिख रहे थे।

जीवन ने सोचा था, पन्द्रह दिन की मजदूरी शेष है चल कर ले आयेगा ।

उनके समीप पहुँचते ही उसने झुककर नमस्ते किया ।

किन्तु इसके बदले ठेकेदार साहब की भौंवें तन गईं और वे उबल पड़े—"क्यों रे बेईमान, इसीलिए तुझे काम दिया था, दो

दिन था, चार दिन घर पर रहा। इसलिए कि तेरे पास दो-चार दिन खाने का प्रबन्ध हो गया था।"

"नहीं बाबूजी! मैं बहुत बीमार पड़ गया था। आज एक हफ्ते से उस पेड़ के नीचे पड़ा था। पास में एक पैसा भी न था। बड़ी मुश्किल से आप तक आ सका हूं। बाबूजी! कुछ पैसा दे दिया जाय।"

सट...सट....सट....तीन-चार चाबुक ठेकेदार साहब ने उसकी क्षीण पीठ पर जमा दिये—"कुत्ता कहीं का, काम करने का नाम नहीं, आया है पैसा लेने। जानता है मेरा कितना नुकसान हो गया तेरे न आने से।" बड़बड़ाते हुए गालियों की बौछार करने लगे वे।

बेचारा जीवन चोट से अधमरा हो गिर पड़ा। फिर भी बड़ी दीनतापूर्वक बोला—"बाबूजी!"

• • •

सर....सर....शब्दों के साथ विद्युत गति से शरदकुमार की कार जङ्गली बीहड़ प्रान्त के ऊबड़-खाबड़ पथ को तय कर रही थी। ऊपर आकाश में सुधांशु चमक रहा था। पूर्व ओर से हिरनी-हिरना मंजिल तय कर रहे थे। एक विचित्र-सी सुगन्ध से समस्त वन्य-प्रदेश सुगन्धित हो रहा था।

उजेली रात्रि होने पर भी स्पष्ट रूप से पथ प्रतीत नहीं होता था। इसी कारण कहीं-कहीं कार फड़फड़ा जाती। बदन में गहरा धक्का लग जाता, फिर भी वह अपनी मंजिल पूर्ण करने में लीन थी।

"अभी कितनी दूर और चलना होगा पिताजी?" शरद

रे ने अपने पिता से पूछा।

"करीब-करीब ६५ मील, क्यों ?"

"कुछ नहीं बाबूजी ? मैं तो ऊब गया बैठे-बैठे।" शरदकुमार ने बदन ऐंठते हुए कहा।

"इसीलिए तुम्हें घर पर ही रोक रहा था, किन्तु तुम नहीं माने।" मदन ने कहा।

कड़... कड़...बड़े जोरदार स्वर कि साथ कार की गति मन्द पड़ गई।

"क्या हुआ ? क्या हुआ प्यारे ?" कहते हुए मदन की भवें तन गई।

प्यारे ने किंचित सहमते हुए कार तत्क्षण रोक दी और फौरन बाहर आ देखने लगा।

"गजब हो गया बाबूजी ! पिछली पहिया बर्स्ट हो गई।" प्यारे ड्राइवर ने कहा।

"कुछ दिखलाई पड़ा।" कार से उतरते हुए मदन ने पूछा।

"नहीं...."

"फिर क्यों ?"

"हवा पहिये में अधिक थी। तीव्र गति से कार दौड़ रही थी। जङ्गली-पथरीला पथ है ही।" कहता हुआ प्यारे रिंच निकालने लगा।

"तुम दूसरी पहिया फिट करो, तब तक जरा मैं...." कहते हुए मदनकुमार पथ के पूर्व की ओर घूम पड़े। उनके साथ ही शरद कुमार भी चला गया।

कुछ ही दूर पर उन्होंने देखा, एक असहाय व्यक्ति पृथ्वी पर पड़ा था और एक विशालकाय आदमी चाबुक उठाये बड़बड़ा

"क्या मामला है"—अनायास हृदय में कौतूहल पैदा हुआ। वे लपक कर उसके पास पहुँच गये।

× × ×

"बाबूजी" कहने के कारण उन्हें उस अभागे व्यक्ति पर दया आ गई और वे उसके समीप पहुँच गये।

उसने सट....सट....दो चाबुक उसके शरीर पर जमा दिया। वह बेचारा अशक्त था....फिर किस भाँति उसका सामना करता।

तीसरी बार चाबुक उठाया ही था कि सुन पड़ा—"ठहरो, ठहरो !"

ठेकेदार साहब ने आँखें घुमाकर देखा। देखते ही सन्न रह गये। पीछे एक विशालकाय व्यक्ति खड़ा था। उनके सँभलने के पहले ही उस व्यक्ति ने चाबुक छीन लिया।

"तू इस गरीब को क्यों मार रहा है ?...." उन्होंने पूछा।

"तुमसे मतलब ? तुम कौन हो पूछने वाले।"

अभी उसका स्वर समाप्त भी नहीं हुआ था कि नवागन्तुक व्यक्ति ने जिनका नाम मदनकुमार था उसे उठाकर पटक दिया और सट....सट....न जाने कितने चाबुक जमा दिये।

"तुमसे मतलब, बेवकूफ....एक अशक्त प्राणी पर चाबुकों की बौछार करते तुझे शर्म नहीं आती।"

इतने परिवर्तनशील दृश्य को देखते ही जीवन के प्राण सूख गए—"अब क्या होगा ..." अनायास उसके मुख से निकल पड़ा।

"बेटा....उठो ! चलो मेरे साथ।" मदन ने उसके समीप

कर कहा — ... में हूँ
इसके लिए यही सजा ठीक थी।

× × ×

"प्यारे-प्यारे....कार की क्या हालत है ?"

"ठीक है बाबूजी ! आप कहाँ चले गये थे ? मैं कितनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" कहते हुए प्यारे ने फाटक खोल दिया। दोनों कार में बैठ गये।

एक गम्भीर दृष्टि प्यारे ने आहत जीवन पर डालते हुए कार स्टार्ट कर दी। वह तीव्र गति से दौड़ पड़ी। निर्बल राकाशशि अपनी झलक अब भी वसुधा पर दिखा रहा था।

× × ×

तनिक शीतल स्पर्श से जीवन की आँखें ढँप गईं। पिताजी गद्दे के सहारे ऊँघते हुए सोच रहे थे जाने क्या-क्या।

किन्तु शरदकुमार को दैव ने एक भावुक व्यक्ति बनाया था। वह अब भी निष्ठुर ठेकेदार के पिशाचतापूर्ण व्यवहारों को सोच रहा था।

एकाएक उसकी दृष्टि जीवन की जेब पर पड़ गई। उसके फट-फटे कपड़े में से कोई चीज चमक रही थी। अज्ञात भावना शरद के हृदय में उत्पन्न हुई। वह उसी भावना के वशीभूत तनिक झुक गया और उस चमकती वस्तु को निकाल लिया था। उसमें लिखा था—

प्रिय जीवन !

जिस भाँति यह रूमाल अधूरा रह गया है, उसी भाँति जीवन की आकांक्षायें अधूरी रह गईं....इसके लिए....

हे भगवान् ! क्या मामला है ? जीवन, कौन जीवन ? क्या इसी का नाम जीवन है ? जिसे अभी-अभी पिताजी ने शहर के

रो भाग में उतार दिया है, या इसके किसी दोस्त का नाम है जिसको यह वास्तविक चिट्ठी है। उँह होगा....छोड़ो इन सब बातों को।

रूमाल अधूरा रह गया है। जीवन की आकांक्षायें अधूरी रह गई हैं—

ये दो वाक्य अब भी उसके हृदय में चुभ रहे थे।

वह सोचने लगा, कैसा रूमाल, किसने लिखा है, किसी का नाम भी तो नहीं लिखा है। फिर क्या अनुमान हो सके....

वह भी न जाने कहाँ चला गया होगा। नहीं तो सब बातें स्वयं विदित हो जातीं। आखिर वह साथ आया क्यों नहीं? पिताजी ने इतना कहा....फिर भी न जाने क्यों वह नहीं आया।

● ●

घर से निकलने के थोड़े ही दिन बाद चित्रा ने अपनी वेष-भूषा एक नवीन साँचे में परिवर्तित कर ली। अपने को इस नवीन आवरण में छिपाने से वह सचमुच एक वैरागिनी की भाँति प्रतीत होती थी और थी भी वह ऐसी ही। यही तो नियति ने उसके साथ गम्भीर क्रीड़ा की थी।

उसके वन्दनीय शिरो-मण्डल पर कुन्तल केश-राशि की शोभा नहीं रह गई थी। वह तो इतने दिनों के भ्रमण के कारण एकांकी हो गया था। स्वच्छ तुषार की भाँति उज्जवल ललाट जिस पर भविष्य में सौभाग्य सिन्दूर की रेखा होती, दुर्भाग्य ने पहले ही अपने हाथों मलीन कर दिया। मीन नयन का काजल वियोग की अवि-रल धारा में न जाने कब बह गया, जिसे वह स्वयं न देख सकी।

गुलाबी अधरों की शोभा ज्वालामयी आहों में न जाने कहाँ समा गई। निर्वासित होते ही रूप, बल, वैभव सब कुछ बदल गया। सिर्फ वेश की कमी थी, एक दिन वह भी बदल गया।

अब उसका वेश सचमुच एक वैरागिनी की भाँति हो गया था। उसमें विलासिता की रंगीनमयी शोभा की झलक-मात्र भी न थी। उसके रूप से समुज्ज्वल प्रकाश का सजीव चित्र झलक रहा था।

बाह्य रूप में जहाँ तक हो सकता था चित्रा ने अपने को बदल लिया किन्तु जो उसकी शक्ति के बाहर था उसे वह किस भाँति बदल सकती थी।

यौवनावस्था की पहली तरङ्ग थी। नेत्रों में एक विचित्र प्रकार की आभा व्याप्त थी। अंकुरित उरोज तनिक कठोर होने लगे थे। अधर पल्लव, ऋतुराज के स्पर्श से नव किसलय की शोभा को प्राप्त होने लगे थे। बदन पर प्रभातकालीन सूर्य की भाँति रक्तमयी किरणें कल्लोल करने लगी थीं। इसी कारण उसे मुक्त संसार में न जाने कितनी ठोकरें खानी पड़ीं।

× × ×

सुख और दुख इन दो वस्तुओं से निर्मित संसार के पेट में सर्वथा विषाद की छाया व्याप्त है। दैव की अद्‌भुत रचना में मनुष्य केवल सुख ही को अपनाने के लिए हर प्रकार का त्याग करता है फिर भी वह सफल नहीं होता। इसका कारण है—सन्तोष का न होना। इसी के न होने से सभी सांसारिक वस्तुएं उसे मृगतृष्णा की भाँति प्रतीत होती हैं।

वास्तव में यही मृगतृष्णा भयानक ज्वाला का रूप धारण कर लेती है, जो प्रायः जलाते-जलाते अस्तित्व का नाश कर देती है।

मनुष्यमात्र जानते हुये भी उसे प्राप्त करने में अपना जीवन बलिदान कर देते हैं। धीरे-धीरे असह्य अग्निपुञ्ज की ओर बढ़ते हैं जहाँ धुआँधार लपटें उठती हैं। अन्त में होश होने पर वे स्वयं को नाश के किनारे उपस्थित पाते हैं। ठीक उसी समय सुख-दुख का भीषण रूप धारण कर लेता है। हृदय सिसकने लगता है। उसी समय याद होता है....अपना विगत आह्लादमय जीवन। किन्तु याद होने से कोई फायदा नहीं प्राप्त होता क्योंकि समय बीत गया रहता है।

ठीक इसी दशा में चित्रा अपने को पा पछता रही थी, किन्तु वह अपने घर से दूर चली आई थी।

बाहर निकलने के पूर्व उसे क्या मालूम था संसार इतना भ्रमपूर्ण है। इसमें सभी व्यक्ति भूल पर चल रहे हैं। फिर एक स्त्री जो सर्वथा निराश्रिता हो, संसार उसके लिए अपना कालिमा-मय हाथ उठाकर दौड़ता है और देवताओं की भाँति गगन-मण्डल से पुष्पवर्षा करता है। देखो, देखो यह है पापिन, त्रैलोक्य भ्रष्ट करने वाली पिशाचिनी।

● ●

कानपुर शहर के अन्तर्गत 'प्रयाग नारायण' के शिवाले पर न जाने कितने वर्षों से माघ सुदी पूर्णिमा को मेला होता आया है। प्रत्येक वर्ष बड़ी धूमधाम के साथ शिवाला स्थित देवी की पूजा होती है। बड़े-बड़े कुण्डों में हवन होता है। गोलाकार धुआँ उड़ कर आसमान की ओर जा विनष्ट हो जीवन की क्षण भंगुरता का प्रमाण देता है। मन्दिर के बाहर तमाम दिन शहनाई बजती है।

गले में रुद्राक्ष, मस्तक पर त्रिपुण्ड, शुभ्र कन्धों पर पवित्र

उपवीत डाले पुजारी जी ऊषा आलोक के प्रथम ही, जबकि रजनी का अल्प अन्धकार अवनीतल पर अवशेष रहता है, सभी कार्य से निवृत्त हो देवता के श्री चरणों के पास आ जाते हैं। उनका पट खोल दिया जाता है। फिर क्या, टिड्डी दल की भांति भक्त समुदाय उमड़ पड़ते हैं। नर-नारी, बालक समूह सभी देवता के चरणों में झन्-झन् के साथ दक्षिणा अर्पित कर देते हैं।

कोई आशीर्वाद ले रहा है, कोई खड़ा मुस्कुरा रहा है। मठ के चारों तरफ दुनिया के न जाने कितने दरिद्र प्राणी दर्शकों के सामने चिल्ला रहे हैं—"बाबूजी एक पैसा....बाबूजी एक धेला... बेटा भूखी हूं....बबुआ अन्धों की फिक्र करना।"

"बहू! तुम्हारा सुहाग अमर रहे....अन्हरी को भी एक धेला देना, आत्मा तर जायेगी....बड़ा पुण्य होगा रानी!"

कितने लोगों को दया आ गई। पास से कुछ दे दिया.... कितने चल, चल दूर हो... कहकर रह गये।

"अरे, छुयेगी क्या? चल हट दूर हो...छूना मत। ओफ ये तो बड़ी...."

आज उसी माघ सुदी पूर्णिमा का दिन था। आज भी पहले की भांति पुजारी रोलिका लगाये बैठे थे। आज भी द्वार पर शह-नाइयाँ बज रही थीं, हवन हो रहा था। भीड़ उमड़ी थी किन्तु एक नवीन सतर्कता के साथ। आज भी न जाने कितने दरिद्र प्राणियों को दया के बदले फटकार मिल रही थी।

"हाय रे भाग्य, तीन घण्टे, पूरे तीन घण्टे हो गया यहाँ। शायद दो-चार मिनट बाकी हों पर ताम्र का एक धेला भी न मिला। प्रत्येक आने-जाने वालों से याचना की पर किसी ने एक पैसा भी न दिया। हाँ फटकार, न जाने कितनी नसीब हो चुकी।

अब तो नहीं रहा जाता, बड़ी भूख लगी है।" मठ के मुख्य द्वार के समीप ही बैठी हुई एक स्त्री निःश्वास छोड़ रही थी।

उसके मादक नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। उसने देखा, समस्त संसार हँस रहा है। हाय! वह क्या करे? उसके लिए तो वह निर्जीव-सा बोध हो रहा था।

राजपथ पर एक कार रुकी। एक सुन्दर दुहरे बदन का नवयुवक जिसके स्वच्छ चेहरे पर मीनी-मीनी रेखें निकल रही थीं, कार से उतरा। उसके पीछे-पीछे एक भद्र महिला भी उतर पड़ी। दोनों मठ की ओर बढ़ चले।

नवयुवक ने घूमकर देखा, सहसा उसके समक्ष एक प्रतिमा-सी चमक गई। देखते ही उसके अन्धकारमय जगत में उजाला छा गया। उसने देखा, पार्श्व में एक धवल दंतपक्ति खड़ी उजाला बिखेर रही है।

"बाबूजी! एक पैसा, बड़ी दुखिनी हूं।" अपनी ओर देखते देख एक दरिद्र ने कहा।

नवयुवक खड़ा चुपचाप भीख मांगनेवाली को देख रहा था। उसे उस दिखावट में मलिन वस्त्रों में एक विचित्र मोती झलक रहा था। नवयुवक न जाने क्या सोचने लगा।

"बाबूजी एक पैसा....." उसने पुनः कहा।

नवयुवक एक शील स्वभाव सज्जन पुरुष था। हृदय में दयालुता तथा भावुकता कूट-कूट कर भरी थी। उसी भावावेश में उसने कहा—"तुम भीख क्यों मांगती हो?"

"बेटा शरद! चलो, छोड़ो इन पचड़ों को, यह तो मेलों में होता ही रहता है। एक से एक दरिद्र प्राणी देखने को नसीब होते हैं।"

"चलता हूँ माँ, अभी चलता हूँ....देर न होगी।" शरद ने कहा,

फिर मंगती की तरफ घूम पड़ा—

"बोलो...तुम भीख क्यों माँगती हो।"

"बाबूजी! इसी पेट के लिए माँगती हूँ।"

"पेट के लिये...." शरद के मुँह से पुनः निकल पड़ा—"तुम नौकरी क्यों नहीं कर लेती?"

"ठीक होगा शरद तुम अपने यहाँ नौकर रख लो इसे...." दूर से सुनाई पड़ा। अचकचा गया। घूम कर देखा, आलोक खड़ा ठहाका मार रहा था।

"अहा हा! नमस्ते, मित्रवर!" शरद ने कहा—"मित्र आलोक! तुम नहीं जानते....यह दुनिया की एक दरिद्र प्राणी है—प्रत्येक व्यक्ति को ऐसों पर दया करनी चाहिये।"

"हाँ....हाँ....तुम बड़े दयालु हो शरद! दया करो....जल्द दया करो, देखो....देखो उस बेचारी के ओठ सूख रहे हैं।" बनाने के लहजे में आलोक ने कहा।

"आलोक! तुम इन दुखियों की दुखभरी व्यथा को क्या समझोगे? मैं इनके लिए सर्वस्व त्याग सकता हूँ। धन-वैभव खोकर भी इनकी दरिद्रता का भागी बन सकता हूँ। समय पड़ने पर मैं अपना जीवन होम कर सकता हूँ आलोक! दुनिया में जिसने दरिद्रों पर दया नहीं की वह मनुष्य, मनुष्य नहीं...नर रूप में राक्षस है।"

दूसरे ही क्षण उसने मँगती के हाथों पर कोई चमकती-सी वस्तु रख दी।

"भगवान तुम्हारा भला करें...." अनायास उसके मुख से निकल पड़ा।

"अब तो तुम प्रसन्न हो?" शरद कुमार ने उस मँगती से

कहा।

'भगवान तुम्हारा भला करें' वाक्य ने उसके हृदय में खल-बली मचा दी थी। उसने पुनः मंगती ओर देखा। सचमुच उसके नेत्रों में एक अधूरी कहानी झलक रही थी।

मंगती दूसरे ही क्षण दूसरी ओर बढ़ गई।

आज उस मंगती को चमकता सिक्का दे शरद को जो प्रस-न्नता प्राप्त हुई उसका वर्णन नहीं।

वह कार में बैठकर घर की ओर चल पड़ा किन्तु उसका चंचल मन तो उससे कोसों पीछे छूट गया, वहीं शिवाले के पास मंगती की लटों में! वह अब भी सोच रहा था, अहा! उसकी बातें कितनी मर्म स्पर्शी थीं।

शयनागार में सोया हुआ शरद सोच रहा था—चले, चलकर देखे, उससे पूछे कि उसकी ऐसी दशा क्यों हुई?

क्या किसी असह्य वेदना ने उसे इस दशा को पहुँचाया है? न जाने कितने प्रश्न उसके हृदय में उत्पन्न होने लगे।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कोई न कोई घटना बहुत गूढ़ और प्रशस्त होकर आती है। प्रायः मनुष्य उसके रहस्योद्घाटन में अपने जीवन की बाजी लगा देता है। उस समय उसकी आंखों पर भ्रम का पर्दा पड़ जाता है। उसे संसार की प्रत्येक वस्तुयें भ्रम-सी प्रतीत होने लगती हैं। उनका मन उद्वेलित होने लगता है। यहाँ तक कि वह छोटी-छोटी वस्तुओं पर, नन्ही-नन्हीं सी बातों पर भी गौर करने लगता है और पूरा भावुक बन जाता है। एक दूरदर्शी की भाँति अन्वेषण करने लगता है।

यह एक प्रकार का उन्माद है, जो प्रायः नवयुवकों में पाया जाता है। जिसके आते ही शरीर में एक विचित्र प्रकार का स्पन्दन

छा जाता है। ऐसा ही उन्माद शरद कुमार पर व्याप्त था जिसके कारण वह आज रात भर सोचता ही रह गया। आखिर वह रहती कहाँ है, अकेली है या... और न जाने क्या-क्या।

मन्दिरों के घड़ियालों की ध्वनि सुन पड़ने लगी। वह उठा और नित्य-कर्मों से निवृत्त हो उसी शिवाले पर पहुँच गया। कोना-कोना ढूंढ़ डाला किन्तु वह वहाँ न थी, फिर मिलती कैसे ? लोगों से पूछा, किन्तु कोई फल नहीं। लाचार खोया-सा, अन-मना-सा वापस लौट गया। अब भी हृदय-पट में एक अतृप्त कांक्षा, एक अमिट टीस अवशेष थी।

● ●

कानपुर शहर !

सन्ध्या समय विभावरी का आगमन, रजनी का अल्प अन्धकार क्षितिज के पास व्याप्त हो रहा था। अस्तप्रायः सूर्य की उद्भासित किरणें नीले-पीले तारों की भाँति झलक उच्च मकानों की शिखाओं को उदीप्त कर रही थीं। राजपथ के दाहिने छोर पर स्थित पैराडाइज होटल के सामने खूब चहल-पहल मची हुई थी। प्रवेश द्वार पर प्रहरी बड़ी सतर्कतापूर्वक इधर से उधर, उधर से इधर टहल रहा था।

द्वार से कुछ दूर आगे होटल के प्रांगण में, जहाँ से राजपथ के समस्त दृश्य झलकते थे, मेजें लगी हुई थीं। बड़े-बड़े सज्जनगण वहाँ कुर्सियों पर बैठे हुए थे। देखने में वे एक ही गिरोह के प्रतीत होते थे किन्तु वेषभूषा आदि में विशेष अन्तर व्याप्त था।

सामने ही मेज पर ब्राण्डी की बोतल ऐक्स न० १ और हवड़ा

बेसमेंट रखा हुआ था। छोटी-छोटी गिलासों में इन्हीं को देखियों का मिश्रमाण अब भी "बज-बज" कर गैस उगल रहा था।

उपस्थित सज्जनों में कोई उसे हाथ में ले निरख रहा था, कोई होठों से लगा रहा था, कोई एक-दो गिलास रिक्त कर चुका था।

"तुम्हारे वस्ल का अब तक, दिले अरमान है बाकी...." उन्मुक्त दशा में एक धीरे से गुनगुनाया।

"वाह ! वाह" की आवाज प्रांगण में छा गई। दूसरे ही क्षण एक ठहाका...ह....ह....ह का गूँज गया।

"क्योंरी बेशर्म....अन्दर क्यों जा रही थी ?" कहते हुए प्रहरी की कर्कश ऊँगलियाँ उसके मुलायम गालों पर 'चट' से जा पड़ीं। वह बेचारी सी भी न कर सकी। देखती ही रह गई दीनता भरी दृष्टि से उस प्रहरी को।

"अन्दर क्यों जा रही थी ?" की कठोर आवाज ने बाहर-भीतर आँगन में बैठे लोगों का ध्यान आकर्षित कर लिया। सबों ने एक नजर देखा—बादलों की ओट में झाँकते हुए मनमोहक मयंक को, दीनता से भरी उसकी रतनारी आँखों को, जो दो उदीयमान नक्षत्रों की भाँति मन्द-मन्द प्रकाश बिखेर रही थीं।

सभी की प्यासी आँखें लबरेज सरोवर के पास आ रुक गईं। मुख का घूंट मुख में ही, हाथों की गिलास हाथों में ही रह गई।

सचमुच सबकी कांक्षा उस समय यही थी कि सोडा और ब्रांडी के साथ घोलकर इस सौन्दर्य प्रतिमा को ही पी लें।

"क्या है, क्या है ?" कहते हुए सभी उठ गये और प्रहरी के पास आये।

"क्या मामला है ?" प्रहरी से पूछा किसी ने।

"यह बदतमीज अन्दर जा रही थी।" तेज आवाज में कहा

प्रहरी ने ।

"तुम अन्दर क्यों जा रही थी, जानती नहीं यह होटल है ?" सान्त्वना के लहजे में एक ने कहा।

"बाबूजी ! मैं क्या जानूँ होटल—मैं तो इतने बड़े-बड़े बाबुओं को देखकर सोची, चलूँ माँगूँ, कुछ पैसा-धेला मिल जायगा, किसी तरह पेट-पालन होगा। ओफ्, आज सारा दिन बीत गया, सिवा फटकार के कुछ भी न मिला। न जाने किसका मुँह देखी थी बाबूजी !" एक ही स्वर में मँगती कह गई। दूसरे ही क्षण उसके नेत्रों से टप्-टप् आँसू की दो-चार बूँदें लुढ़क पड़ीं।

उसके गालों पर प्रहरी की कर्कश ऊँगलियों की छाप अब भी दीख रही थी।

"ओफ् हो, एक पैसा...." एक दूसरे ने नजर घुमाते हुए कहा।

'क्यों भाई, उस गरीब को तुम लोग क्यों सता रहे हो। उसने तुम लोगों का क्या बिगाड़ा है ?"

"जरा से मामले को तुम लोगों ने वृहद् रूप देकर बेकार इतना मजमा राजपथ पर इकट्ठा कर लिया, इससे फायदा ? छोड़ो इन पचड़ों को।" किसी दूसरे ने कहा-"बोलो, तुम क्या चाहती हो ?" मँगती से पुनः पूछा उसने।

उसके पहले ही किसी ने जबाब दिया—"पैसा माँगती है, पैसा। क्यों तुम पैसे माँगती हो न? आजकल पैसे का मूल्य इतना सस्ता नहीं कि यों ही फेंका जाय।"

"माँगने की क्या आवश्यकता है ? यह नाचे-गाये, खुद-ब-खुद ही झड़ी लग जायगी।" कोई बोला।

हाय री किस्मत ! वह लाचार थी, क्या करे ? क्षुधा शान्ति के लिए उसे सब कुछ करना ही था। लाचार उसने ऐसा ही किया।

... के सामने गहरी चिल्ल-पों मच गई। कारें आतीं, भों-भों कर रुक जातीं। इतनी बड़ी भीड़ में भी एक व्यक्ति लोगों की दृष्टि बचा बिजली के खम्भे के सहारे खड़ा उस नाचनेवाली की प्रतिमा देख रहा था।

वह तन्मयतापूर्वक नाचती, चक्कर के साथ घूमती, उछलती-कूदती....पुनः अपने अङ्गों को भाव-भंगिमा के साथ सिकोड़ लेती।

जिस ओर उसका प्रकाशमान मुखड़ा घूम जाता, उधर उसके कजरारे नेत्रों से विद्युत् छटा की भाँति आभा झलक जाती। लोगों के दिलों में वह एक शर्त-सी छा जाती। उपस्थित जनता की दृष्टि उसी पर थी। उसकी गोल-गोल भुजायें चक्कर काट रही थीं। नृत्य करने में लीन उसके मुखमण्डल पर यौवन कल्लोल कर रहा था। उसका नृत्य सभी का दिल अपनी ओर खींच रहा था।

जरा और रङ्ग जमा, भक्तवत्सल धन्य-धन्य पुकार उठे। इसी चिल्ल-पों में खम्भे के सहारे खड़ा व्यक्ति लोगों की दृष्टि बचा भीड़ में घुस आया। वह उस नाचनेवाली को घूर-घूर कर देख रहा था।

समस्त जनता नृत्य से विस्मित हो रही थी। सभी का मुखड़ा खिल रहा था। किन्तु न जाने क्यों उसकी उदासीनता गहरी होती जा रही थी। मिनट-मिनट पर उसके होठों पर मुस्कुराहट के साथ आह-सी निकल पड़ती। हलकी मुस्कुराहट में गहरी उदासीनता झलक रही थी। साथ ही साथ उसकी आँखों में भ्रम का पर्दा व्याप्त था। वह उसे पहचानने की कोशिश कर रहा था किन्तु पहचान सका या नहीं, वही जाने।

नृत्य करते ही उसने गाया—

"शरबते दीदार की प्यास"

वाह-वाह की ध्वनि छा गई। भक्तवत्सल झूम उठे।

"ओफ् हो, अजब....है गजब है...." उपस्थित समुदाय में किसी के मुख से टपक पड़ा।

सचमुच उसका नृत्य, उसका स्वर, उसकी सरलता, उसकी अदा बड़ी ही आकर्षक थी। उसकी व्याख्या नितान्त दुरूह है।

वह एक नैसर्गिक दृश्य था। उसके स्वर में वक्षस्थल की भाँति चढ़ाव-उतार था। उसकी लचक में माधुर्यता के साथ-साथ सरसता का पुट था। उसका प्रकाशमान मुखड़ा भावों की लड़ी में विलीन था। अपनी ही धुन में उन्मुक्त हो वह कभी पूर्ण पगली सी, कभी रानी-सी झलकने लगती। कभी-कभी उसकी आँखों से आँसू टपक पड़ते। ओफ् ? कितनी दर्द भरी उसकी करुण कहानी थी, कौन समझे उसके दर्दे दिल को ?

शान्त सरिता की स्निग्ध जलधारा को जिस प्रकार पत्थर का एक छोटा-सा टुकड़ा आलोकित कर देता है। लगातार एक पर एक धारा वृत्ताकार उठने लगती है। और कूल तक पहुँचते ही विनष्ट हो जाती है, ठीक इसी भाँति उस मलिन वस्त्रधारी नव युवक के हृदय को (जो भीड़ में घुसा था) नृत्य करने वाली की रागिनी ने उद्भासित कर दिया।

आह ! बहुत दिनों पर आज यह पहला क्षण था जबकि उसके हृदय में मधुर पीड़ा की अनुभूति हुई, किन्तु वह क्षण भी क्षणिक ही था।

थोड़ी देर बाद ही उसने अपना फटा आँचल फैला दिया।

झन्न ...झन्न ...झन्न...सिक्कों की वर्षा होने लगी। देखते ही उसकी आँखें छलछला गईं।

आँखों से पुनः आँसू की बूँदें ढुलक पड़ीं।

दूसरे ही क्षण अपनी आँचल समेट वह सड़क के अगले छोर की ओर जल्दी-जल्दी बढ़ चली।

उसके हटते ही भीड़ हट गई। लोग अपनी-अपनी राह पर चलने लगे किन्तु वह मलीन वस्त्रधारी नवयुवक धीरे-धीरे उसी के पीछे चल पड़ा। उसका मुखमण्डल शान्त था।

मन्द चाल चलने वाली भँगती ने जब देखा कि लोग जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये अपने-अपने घरों की ओर जा रहे हैं, अन्धेरा घना हो रहा है तो उसने भी कदम बढ़ाया।

"बुलाकर साफ-साफ पूछ लूँ, आखिर यह कौन है? वही तो नहीं है, उफ् क्या बला है। नहीं नहीं, वह यहाँ क्योंकर आ सकती है।" इत्यादि सोचता हुआ वह उसी का अनुसरण कर रहा था। सोच रहा था—यहाँ बुलाकर पूछने से क्या फायदा, कहीं न कहीं इसका बसेरा अवश्य ही होगा। बस उसी स्थान पर सब राजफाश हो जायगा।"

भँगती ने तनिक ठहर कर देखा। पुनः न जाने क्यों वह जाने लगी।

धीरे-धीरे गली के मोड़ पर पहुँच कर वह घूम गई। भीतर गली में गहरा अन्धेरा व्याप्त था। अगल-बगल कहीं-कहीं मकानों में झिलमिलाते हुए दीपक जल रहे थे।

मलिन वस्त्रधारी नवयुवक तो गली के तोड़-मरोड़ में घबरा सा गया किन्तु वह उसी चाल से बढ़ी जा रही थी। शायद वह इन काली गलियों से पूर्ण परिचित थी।

बीच में कई बार उसने उसका ध्यान आकर्षित किया किन्तु दोनों एक दूसरे को देखते हुए भी न पहचान सके। शायद उनकी आँखों पर भ्रम का पर्दा व्याप्त था, वह विश्वास न कर

सका कि यह वही है।

इसी खिचखिचाहट में वह गली में घुस गई।

दूसरे ही क्षण एक गहरी चीख की आवाज सुन पड़ी।

उसके हृदय में एक हूक-सी छा गई, वह दौड़कर गली में आ गया। टिमटिमाते दीये के अल्प प्रकाश में उसने देखा, दो व्यक्ति उसे पकड़े मुख में कपड़ा ठूसने की कोशिश कर रहे हैं।

"पुलिस, पुलिस....दौड़ो....दौड़ो...खतरा हुआ!" चिल्लाता वह उन आक्रमणकारियों के पास पहुँच गया।

कार्य में विघ्न उपस्थित होते देख एक उसी ओर दौड़ पड़ा और दोनों भिड़ गये।

भों....भों....करती हुई कार सन् से उस गली में घुस पड़ी।

कार की रोशनी से वे भाग गये किन्तु वह सम्हल न सका और धक्का लगते ही गिर पड़ा। उसे गश आ गया।

कार रुक गई। ड्राईवर उतर पड़ा।

× × ×

होश आने के बाद मस्तक पर तत्क्षण उसका हाथ पहुँच गया। स्पर्श से तनिक दर्द-सा हुआ। हाथ खींचकर देखने से प्रतीत हुआ शायद खून की धार निकल रही है। धुँधले मयंक की भाँति धीरे-धीरे सब बातें उसे स्पष्ट झलकने लगीं।

"इतनी अधिक ठण्ड मुझे क्यों लग रही है!" अनायास उसके मुख से निकल पड़ा।

उसने सड़क की ओर देखा—सड़क कीचड़ से लबालब थी और स्वयं उसी कीचड़ में वह पड़ा था।

उठने का प्रयत्न करने लगा किन्तु सब बेकार।

"फौरन पकड़ लो इस बेहूदे को और ले चलो राजा के पास।"
पीछे से सुनाई पड़ा।

अभी वह घूमकर अच्छी तरह देख भी न था सका कि किसी ने उसके चेहरे पर नकाब डाल दिया।

• •

धीरे-धीरे उसने आँखें खोलीं। सिर में अब भी पीड़ा से हो रहा था। विगत बातें झिलमिलाते चिराग-सी दीखने लगी थीं। उसे अधिक आश्चर्य हो रहा था इसलिये कि वह एक सजे-सजाये कमरे में अपने को पा रही थी। सिर, वह भी किसी की सुखमयी गोद में स्थित था। अधिक चैतन्य होने पर हृदय की धड़कन तीव्र होने लगी।

ठीक उसी समय किसी की मुलायम ऊँगलियाँ उसकी पेशानी पर घूम गईं। अहा कितना मादकमय था वह स्पर्श, कितने अल्हड़पन से आप्लावित था वह सहलाव।

उसने पूर्णरूप से आँखें खोलकर देखा।

कितनी सौंदर्यता से युक्त था वह कमरा....

तत्क्षण वह उठने की कोशिश करने लगी, किन्तु पीड़ा असहनीय थी, उठ न सकी।

सिरहाने बैठे हुए व्यक्ति की अवस्था विचित्र-सी हो रही थी। वह सोच रहा था—दैव की महिमा। जिस वस्तु का वह अपना सर्वस्व त्याग करने पर भी प्राप्त करने की आशा न रखता था उसे निमिष-मात्र में अनायास पा उसके रोम-रोम पुलकित हो गये।

दूसरे उसके सहलाव में उसे महान सरसता और विचित्र आनन्द आ रहा था। वे दोनों हो यौवन के मादक द्वार पर पहुँच गये थे। शायद एक ही राह के पथिक थे इसी कारण नूतन आनन्द का आभास हो रहा था उस सहलाव में।

"मैं कहाँ हूँ और तुम कौन हो?"

दर्द से कराहते हुए उसने कहा।

टन्...टन्...टन्.......एक... दो....तीन ....चार....पाँच.... करके घण्टाघर की घड़ी ने बारह बजने की सूचना दी।

"ओफ हो! बारह बज गये।" अनायास उसके मुँह से निकल गया। तत्क्षण अपनी रिस्टवाच की ओर देखा—"मेरी घड़ी तो पन्द्रह मिनट फास्ट जा रही है।"

एक लम्बी साँस लेते हुए उसने कहा—"पूरे तीन-चार घण्टे हो गये तुम्हें बेहोश हुए....इस समय ज्यादा बातें न करो। चैतन्य होने पर सभी बातें जान जाओगी। इस जगह तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी। तुम्हें सर्दी लग रही है?" नवयुवक ने समवेदना भरे स्वर में पूछा—"जरूर लगती होगी, क्योंकि तुम्हारे सिर पर बर्फ के टुकड़े रखे हैं। इसलिए कि डाक्टर साहब ने यही बतलाया था।"

"ओफ! इतनी पीड़ा, इतनी कमजोरी।" नवयुवती ने कराहते हुए कहा। उसकी आवाज से नवयुवक ने उठकर किवाड़ बन्द कर दिया, अब ठण्ढी हवा आनी बन्द हो गई।

"शरद....शरद...." बगल वाले कमरे से पिताजी ने पुकारा।

शरद चुप।

"कौन है, कौन कराह रहा है?" पुनः पिताजी ने प्रश्न किया।

"कोई नहीं पिताजी, एक भंगती है, मेरी कार से चोट लग

गई थी, लाचार उठा लाया।" सकुचाते हुए कहा उसने।

"चोट अधिक है ?"

"हाँ पिताजी !"

"ओफ्! कैसे अन्धों की तरह कार ले जाता है यह हमारा ड्राइवर! जब देखो तब एक्सिडेण्ट, जहाँ देखो वहीं एक्सीडेण्ट।"

आप ही आप वे प्यारे ड्राइवर पर झल्ला पड़े।

"क्या समाचार है अब ?"

"ठीक है पिताजी! किन्तु पहले अवस्था ठीक न थी।"

●

शरद के लिए मानो आज चाँद के मुखड़े में नवीन सौन्दर्यता प्रस्फुटित हो रही थी। उसकी किरणों में नवीन शीतलता, वायु में नवीन मादकता का अनुभव हो रहा था। रात्रि की नीरवता में भी उसे संसार हँसता-सा प्रतीत हो रहा था और कमरे की प्रत्येक वस्तुएं नवीन शोभा धारण किए हुए सौन्दर्य देवियों-सी झलक रही थीं। संसार इतना सुन्दर है, सचमुच इसका अनुभव उसे आज हो रहा था।

ठीक उसी समय उसका मन मलिन्द...वहम में....भ्रम में पड़ गया और उसने देखा अपनी ओर....वह भी हँस रहा था...रोम-रोम हँस रहे थे। दूर क्षितिज के पास हजारों कमल दल विकसित हो गये थे। उनकी पंखुड़ियाँ, नाजुक हवा में लहरा रही थीं। वह स्वयं चाहता था इन कमल समूहों के पास किसी भाँति पहुँच जाय।

कितना नैसर्गिक था उस वाटिका का मनोरम दृश्य! ध्यान

में तन्मय शरद की आँखें बन्द हो गयीं। वह कल्पना की सुखद गलियों में घूमने लगा.... अनायास मुँह से निकलने लगा—"अहा, आज का दिन शुभ है, संसार के लिए, नहीं मेरे लिए...."

× × ×

पैराडाइज होटल के अधीश्वर, वैभवशाली मदन का पुत्र शरद कुमार लड़कपन से ही भावुक था। भावुकता उसमें ईश्वरीय देन थी। इसीलिए वह छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान देता था। इसके अतिरिक्त मैट्रिक पास करते ही उसकी प्रतिभा द्विगुणित हो गई। दूसरे ही क्षण अँगड़ाई लेती हुई आ गई उसकी जवानी, जो प्रायः दीवानी हुआ करती है। इसी दीवानेपन में वह एक अच्छा चित्रकार बन गया। कभी-कभी शरद अपनी भावुकता के वशीभूत कल्पित नायिका बना, कल्पना के सुनहले झूले पर झूलता...उसी में विभोर हो जाता और वास्तविक रूप में वैसी ही नायिका पाने हेतु विकल हो जाता। सोचता, काश! इस प्रकार उसकी कल्पना पूर्ण हो जाती।

किन्तु आज वैसी ही उसकी प्रत्यक्ष मूर्ति पा वह फूल गया। रोम-रोम खिल गये और आँखों पर गर्व का पर्दा छा गया। यही कारण था कि वह तन्ययतापूर्वक उसकी सेवा कर रहा था और चाहता था अपने जीवन की बलि दे उसे बचा लेना।

● ●

उसके लिए वह एक नया संसार था, जिसको न उसने कभी देखा था और न कभी सुना था। वहाँ की वस्तुएँ देख वह पागल-

सा हो गया। तब उसे आक्रमणकारियों ने अच्छी तरह से अपने कब्जे में कर लिया था। इसी कारण उसके मुख का नकाब हटा दिया था।

धीरे-धीरे वह वास्तविक बातें समझने लगा। प्रत्येक वस्तुएं भयानक-सी प्रतीत होने लगीं। सचमुच वहाँ के मनुष्य उसे राक्षस जैसे लग रहे थे। वह भयभीत हो ठिठकता, पर वे उसे मार-मार, धक्का दे-दे ढकेल रहे थे और अपने राजा के समीप ले जा रहे थे।

उसने सोचा—'समस्त जीवन खतरे से पूर्ण है। हे भगवान! क्या होगा?"

दूसरे ही क्षण वे उसे घसीटते हुए एक बड़े-से मकान में घुस गये। अन्दर पहुँचते ही उसने देखा—एक बड़े-से वृत्ताकार पत्थर के टुकड़े पर आग जल रही थी। दो-चार टूटी-फूटी मेजें और कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक मेज पर शीशे के गलास में मदिरा भरी थी। सामने ऊँची कुर्सी पर एक विशालकाय व्यक्ति साक्षात् प्रेत-सा बैठा था। उसके बगल ही में एक कुलटा स्त्री बैठी इतरा रही थी जिसकी आँखें सुर्ख थीं।

वह काला व्यक्ति बड़े-प्रेम से उसका चुम्बन ले रहा था।

राजा से थोड़े ही फासले पर हड्डियों का ढाँचा खड़ा था, जिसके बदन पर मांस का नामोनिशान भी न था। ढाँचे के भयानक जबड़े से आग के शोले निकल रहे थे।

पास ही दो-चार नग्न देवांगनायें नृत्य कर रही थीं। घण्टे घड़ियाल की ध्वनि निकल रही थी।

धीरे-धीरे भूकम्प की भाँति वह ढाँचा हिला और उसके मुख से जीभ बाहर निकल आई।

एक व्यक्ति ने पास ही स्थित एक बकरे को उठा खंजर से

दो टूक कर दिया और उसका रक्त ढाँचे की जीभ पर चढ़ा दिया।

ठीक उसी समय उन लोगों ने उसे सामने ला खड़ा कर दिया और न जाने क्या-क्या कहा।

सचमुच वह कैदी काँप रहा था।

"कौन है यह बदमाश ?" राजा ने गरज कर कहा और तत्क्षण टोपी सिर पर दे अपना हण्टर उठा लिया।

इतनी कठोर आवाज सुन एकबारगी वह काँप गया, जीभ तालु से चिपक गई।

"मैं....मैं...." इसके आगे वह एक शब्द भी न बोल सका।

"जल्दी बोलो, तुम्हारा क्या नाम है ?" राजा ने पुनः पूछा।

"जीवन !" बड़ी मुश्किल से उसने कहा।

न जाने क्या और कहने जा रहा था कि बीच में ही राजा ने डपट कर कहा—"मैं कुछ भी नहीं सुन सकता, जानते हो तुम किसके पास हो ? दुनिया के बहादुर खुशनसीब राजा के पास। तुमने मेरी प्रजा के साथ झगड़ा किया ?"

"खुशनसीब राजा की आज्ञानुसार तुम्हें फांसी का हुक्म दिया जाता है।" दूसरे व्यक्ति ने खड़े होकर कहा।

उफ्, फाँसी, कितना भयानक शब्द है। सुनते ही वह काँप गया और दया...दया चिल्लाने लगा।

"तुम शीघ्र मरने के लिए तैयार हो जाओ।" राजा ने गरज कर कहा—"यदि किसी का स्मरण करना है तो कर लो, पाँच मिनट, केवल पांच मिनट का समय दिया जाता है।"

ह....ह....ह....शब्द के साथ कमरा गूँज उठा। पत्थर पर की अग्नि अब भी जल रही थी।

"दया करो, मुझे छोड़ दो।" गिड़गिड़ाकर पुनः उसने कहा।

सुरा से उन्मत्त राजा पागल-सा हो गया था। बिगड़ कर बोला—"तू मुझसे बहस करता है, जल्द तैयार हो जा मरने के लिए !"

राजा का हिलता हुआ हण्टर उसकी पीठ पर सट से जा पड़ा और दर्द से वह चीख उठा।

"मेरी बातें भी सुन लीजिए।" गिड़गिड़ाकर जीवन ने कहा।

उसकी बातों से राजा को दया न आई। उसने पुनः दूसरा हण्टर उठाकर लगा दिया सट से—

"बदतमीज, फिर गुस्ताखी की तुमने !"

राजा ने दो व्यक्तियों को इशारा किया और वे उसे ढाँचे के समीप कैदी की भाँति बांध कर ले गये।

"खंजर उठाओ।" राजा ने कहा।

दूसरे ही क्षण घण्टों की ध्वनि आने लगी।

"दया....दया...." न जाने कितनी बार उसने भीख माँगी पर हाय, कौन सुन सकता था वहाँ ?

"तैयार हो ?" राजा ने जल्लादों से पूछा।

"हाँ !"

"आज्ञा दी गई।" राजा ने कहा।

स्वर के साथ ही जल्लादों ने खंजर ऊपर की ओर उठाया।

एक, दो, खंजर तनिक झुका। राजा तीन कहने जा ही रहा था कि सुन पड़ा—"ठहरो....ठहरो !..."

उसमें रूप रंग, यौवन का विकास सब कुछ था। लवंगलता-सी लचक, जूही-लता-सा सुनहला रंग, चम्पकलता-सी लावण्यता चेहरे पर कल्लोल कर रही थी। वह सौंदर्य की देवी थी। इसी कारण इस जगत की राजरानी कही जाती थी। राजा समस्त

दरिद्र प्रजा पर शासन करता था किन्तु वह स्वयं राजा पर शासन करती थी और इसी कारण उसका आधिपत्य अधिक था।

उसके तनिक इशारे पर राजा अपना जीवन उत्सर्ग करने को तैयार रहता....ऐसी थी वह नर्तकी, जो राजरानी नाम से सम्बोधित की जाती थी।

ठहरो... ठहरो, की ध्वनि करनेवाली यही राजरानी नर्तकी थी, जिसने आते ही सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

"वह आ गई, वह आ गई" दूसरे ही क्षण शोर होने लगा।

देवता के सामने अर्पित किए हुए जीवन ने भी घूम कर देखा—सामने प्रवेश द्वार से एक नवयुवती यौवन के रंग में रङ्गी हुई इठलाती चली आ रही थी। आते ही सबके मुखड़े चमक गये। किन्तु जीवन की भौवें तन गईं।

"महाराज!" समीप पहुँच कर नर्तकी ने कहा।

महाराज शान्त थे।

"इस मनुष्य की आप क्यों बलि दे रहे हैं?" साथ ही उसके लोचन द्वय शोखी से नाच गये। महाराज को गहरी चोट-सी लगी। वह आह कर उठे।

"बोलिए महाराज?" उसने पुनः पूछा।

"इसने मेरी प्रजा के साथ झगड़ा किया है।"

"कुछ भी हो, किन्तु इसे आप अभी छोड़ दीजिए।"

"इसने बहुत गहरा अपराध किया है!..."

"मैं कहती हूँ इसे छोड़ दीजिये!" नर्तकी ने कहा।

"क्यों?" राजा ने पूछा।

"योंही!" वह बोली।

"छोड़ दूँ?..." राजा ने पुनः पूछा।

"हाँ !" गम्भीर भाव से उसने कहा।

"कौन सनम !" दूसरे ही क्षण मौत के समीप पहुँचे हुए जीवन ने कहा।

"हाँ....जीवन !"

तमाम दरबार में एक शान्ति-सी छा गई।

भाग्यचक्र घूम गया। वह मूर्ति के सामने से हटा दिया गया।

राजा ने लपलपाती मूर्ति की जिह्वा पर दो बकरों का बलिदान कराया।

इधर सनम गरीब जीवन को लेकर अपने प्रकोष्ठ में चली गई। उसी जीवन को लेकर जिसे सङ्गदिल समाज के कारण इतनी विपत्तियाँ सहन करनी पड़ीं और जिसका निर्माण ही शायद दैव ने इसीलिए किया था।

"तुम यहाँ कैसे आ गई सनम ?" जीवन ने प्रश्न किया।

सनम शान्त थी।

हाँ, उसके नेत्रों से आँसू की बूँदें अवश्य छलक गयीं।

"तुम रोती क्यों हो सनम ! आखिर मामला क्या है ?" जीवन ने पूछा।

"क्या कहूँ जीवन ! मुझे शर्म आ रही है। किन्तु क्या करूँ, लाचार थी, मैं मजबूर थी।..."

"तुम्हारी ऐसी दशा किसने की सनम ?"

"किसने की, क्या जानना चाहते हो ?—ऐसी दशा तुम्हारे सङ्गदिल समाज ने की, जिसके कारण...."

"शान्त रहो सनम, इसी सङ्गदिल समाज ने मेरी भी ऐसी दशा की है। इतना ही नहीं सनम, हमारी-तुम्हारी तरह न जाने कितने नौजवानों की जवानियाँ इसी सङ्गदिल समाज के कारण

बर्बाद हो रही हैं। न जाने कितने चिता पर भस्म हो गये पर इस सड़ियल समाज के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी है। ईश्वर ! जाने भविष्य में इसकी दशा सुधरेगी या नहीं !"

× × ×

"अब मैं जाऊँगा सनम !..." जीवन ने कहा।

"क्यों, रुक नहीं सकते ?...."

"नहीं..."

"दो दिन रहकर चले जाना जीवन !"

"नहीं सनम, अब दो मिनट भी नहीं रह सकता।"

दूसरे ही क्षण वे करुणार्द्र हो लिपट गये।

• •

"बेटी !"

रात्रि के बारह बजे जबकि ठण्डी हवा चल रही थी, किसी ने मधुर स्वर में पुकारा।

उसने आँखें खोल दी, नेत्रों के सामने साक्षात् पार्वती जैसी एक नारी शुभ्र साड़ी धारण किए मस्तक सहला रही थी। यह नारी और कोई नहीं, स्वयं शरद की माँ तिल्लो थी। इतना अधिक स्नेह देख चित्रा कुछ क्षण के लिए अपना सिर दर्द भूल गई।

"माँ...." धीरे से उसने कहा।

"तनिक दूध पी लो बेटी !" मधुर स्वर में माँ ने कहा।

दूसरे ही क्षण सकुचाती हुई चित्रा ने दूध का गिलास थाम लिया। वास्तव में घर त्यजित करने पर उसे यहाँ ही इतने स्नेह

और सुख की नींद से भेंट हुई थी।

चन्द ही दिनों में यहाँ की जलवायु, प्यार, सेवा सभी ने मिलकर उसे पहले की भाँति बना दिया।

"बेटी, तुम्हारा नाम ?" एक दिन माँ ने पूछा।

"चित्रा...." लजाते हुए वह बोली।

दूसरे ही क्षण माँ न जाने क्या सोचने लगी।

× × ×

जीवन और चित्रा नामक दो नदियाँ पृथ्वी के वक्षस्थल पर सतत शान्त अपनी धारा से बहती हुई संगम पर मिल गई थीं। उन धाराओं का मिलन शास्त्र, समाज, दुनिया सभी ने देखा—किन्तु कोई न बोल सका—"क्यों मिलन हुआ ?"

फिर दो धाराओं के एक हो जाने से पूर्ववत् वेग में अधिक उत्तेजना आ जाना एक स्वाभाविक बात है। इसीलिए वे धाराएँ नवीनोत्साह से नवीन रूप धारण कर अत्यधिक वेग से बहने लगीं किन्तु कूल उनका असीमित था।

लाचार वे कूल सीमित करने की कोशिश करने लगीं।

उनकी यह हरकत किसी को सह्य न हो सकी। दुनिया उन्हें देख तिलमिला गई। समाज ने कठोर हृदय धारण कर लिया और भीषण पहाड़ी का रूप धारण कर उनकी वेगवती धारा में कूद पड़ा, इसलिए कि वे पुनः दो हो जायें।

धाराओं की गहराई इतनी अधिक तो थी नहीं कि सम्पूर्ण पहाड़ी को अपने गर्भ में छिपा लें। लाचार दो रूप हो गईं। दो मिले दिलों को अलग कर अपनी संगदिली का प्रमाण दे, किसी की आबाद होती दुनिया को उजाड़ कर भयंकर खण्डहर

बना, निष्ठुर समाज ने लम्बी साँस ली। किन्तु उसने तनिक आगे दृष्टि फैलाकर न देखा कि अलग होने पर भी वे धाराएँ उसी वेग से, उसी उल्लास से कल-कल करती हुई बह रही हैं या नहीं।

× × ×

उन दो जलधाराओं को अलग हुए न जाने कितने दिन व्यतीत हो गये। यावत् जगत पर कालिमा बिखेरने वाली न जाने कितनी रात्रियाँ आईं और चली गईं। मयंक न जाने कितनी बार उन कालिमाओं को प्रक्षालित किया और पतन के गर्त में चला गया। रिमझिम-रिमझिम बरसाती घड़ियाँ भी निकल गईं और उनके कीचड़ सूखकर धूलि-कण बन उड़-उड़ बदन पर जमने लगे।

यह संसार का एक नैसर्गिक-परिवर्तन था, प्रकृति का चल-चित्र था जो एक पर एक बदलता गया। किन्तु इतने परिवर्तन के होते हुए भी उसी उल्लास, उसी वेग से वे कल-कल करती हुई बह रही थीं। यद्यपि समाज की संगदिली के कारण वे पुनः एक न हो सकीं, किन्तु उनकी आकांक्षा तनिक भी विनष्ट न हो सकी।

अब उनके हृदयों में वियोग की भीषण ज्वाला धू-धू कर सुलग रही थी और जीवन की बलि देकर परस्पर मिलना चाहती थी।

इसी व्याकुलता के वशीभूत हो एक दिन उसने कह ही दिया—

"माँ!"

"क्या है बेटी?" माँ ने सप्रेम कहा।

"यद्यपि यहाँ रहने से मुझे अत्यधिक आनन्द है माँ, पर मेरा दिल न जाने क्यों यहाँ से जाने को चाहता है।" कहने के साथ ही उसके लोचन द्वय सजल हो गये।

"कहाँ जाओगी बेटी?"

"भाग्य जहाँ ले जाय माँ!"

"नहीं बेटी, मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी।"

"क्यों माँ? मेरा क्या अधिकार इस महल में रहने का? मेरी इतनी अधिक ममता क्यों है माँ?"

"अधिकार! पूछती हो तुम्हारा क्या अधिकार है। बेटी! तुम पागल हो गई हो! तुम्हारा इस महल में सर्वस्व अधिकार है। दूसरे मैं तुम्हें हृदय से चाहती हूँ इसलिए कि शरद ने जन्म लेकर पिता जी की गोद पूर्ण की है और आ बेटी, मेरी गोद शून्य है उसे इस भाँति पूर्ण कर दे।" चित्रा को अपनी गोद में बैठाते हुए माँ ने कहा, साथ ही उनकी आँखें सजल हो गई।

चित्रा शान्त थी, सोचने लगी—"ओफ! इतनी ममता एक पराये व्यक्ति पर! किसलिए?...."

किन्तु उसका हृदय शान्त रहा, कोई उत्तर न मिला।

"अब इस तरह पागलपन की बातें कभी न करना बेटी!" कहते हुए माँ ने उसके अधरोष्ठों को चूम लिया।

× × ×

खुली हुई छत पर चित्रा बैठी थी। अस्तप्राय सूर्य की सुनहली किरणें उसके उद्भासित मुखमण्डल पर झुक-झुककर झाँक रही थीं। सामने की कोठरी में शरद कुमार बैठा हुआ न जाने क्या लिख रहा था। एकाएक उसकी उड़ती हुई दृष्टि खिड़कियों को पार कर सामने की छत पर जा पड़ी। वह अपनी कौतूहल-पूर्ण दृष्टि न रोक सकी और टकटकी लगाकर देखने लगी

चित्रा की साड़ी का कोना हवा में उड़ रहा था। उसमें कुछ विचित्र ही आभा झलक रही थी।

"अहा ! ऐसा सौन्दर्य तो शायद अब तक मैंने देखा ही नहीं...." अनायास शरद के हृदय ने कहा ।

सचमुच चित्रा आज रति लजावनहारी नायिका-सी बनी थी। वह प्रयाग नारायण के शिवाले पर भीख माँगनेवाली, पैराडाइज होटल के सामने नृत्य करने वाली चित्रा नहीं रह गयी थी। समय-चक्र की भाँति उसमें न जाने कितने परिवर्तन हो गये थे। उसका वेश अन्ततः वैसा नहीं रह गया था।

अब तो उस वेश से सौन्दर्य का झरना बह रहा था।

उसके विकसित गुलाब सदृश अधर गौरवर्ण के हो रहे थे। उसका सुचारु रूप से मनमोहक श्रृङ्गार, लम्बे-लम्बे कलित कुन्तल केश राशि में सुगन्ध प्रस्फुटिक हो रही थी। रजनी के चन्द्रभूषण की भाँति मोतियों की माला चमक रही थी। शान्तिमय कलेवर रेशमी साड़ी से आच्छादित था। मूल्यवान कंचुकी से उन्नत पयो-धर ढँका हुआ था। सचमुच इतने श्रृङ्गारों से युक्त वह उर्वशी-सी प्रतीत हो रही थी।

शरदकुमार उन्मत्त हो गया और टकटकी लगाकर देखने लगा।

उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि वह अपने को खो बैठा। उसी खोयेपन में अनायास मुँह से निकल पड़ा...."चित्रा !"

चित्रा छत पर अपने को अकेली ही समझती थी, इसी कारण वह अङ्ग-प्रत्यंग से बेसुध थी। 'चित्रा' शब्द से उसे हूक-सी लगी, वह अचकचा कर देखने लगी और झेंप-सी गई।

"एक ग्लास पानी तो देना, बड़ी प्यास लगी है..." शरद ने कहा।

"ओफ् !....तुम हो। मैं तो घबरा गयी थी।"

साथ ही एक ठहाका गूँज उठा।

दूसरे ही क्षण चित्रा पानी लेने चली गई।

"लीजिए...." पुनः सामने आ उसने कहा।

शरदकुमार अपनी भूल पर सकुचा गया और गिलास थाम लिया। पानी पीने पर भी उसकी तृष्णा शान्त न हो सकी। जाने क्यों उसकी आंखों में अब भी प्यास झलक रही थी। इसीलिए वह टकटकी लगाकर देखता ही रह गया।

किन्तु चित्रा इतनी ढिठाई न कर सकी और उसने तत्क्षण अपने नेत्र झुका लिये।

"चित्रा।"

चित्रा शान्त थी।

"पानी तो पीया, किन्तु प्यास न जा सकी।"

"........"

"सच कहता हूँ चित्रा, मेरे अन्तस्थल में बड़ी जोर से प्यास लगी है। मेरा हृदय पानी-पानी चिल्ला रहा है किन्तु कहीं पानी का नाम नहीं। फिर किस भांति तृषा शान्त हो? बोलो चित्रा! तुम्हारे पास अगाध जलराशि है, क्या तुम मेरी तृषा शान्त कर सकती हो?"

चित्रा शान्त। वह शरदकुमार की विचित्र पहेली न भांप सकी।

"बोलो चित्रा। क्या मैं यूँ ही पानी बिना तड़प-तड़प कर मर जाऊँ? क्या तुम यही चाहती हो? तनिक मेरी ओर देखो, मेरा कुन्दन-सा रंग कितना फीका, कितना शुष्क पड़ गया है। जानती हो क्यों? इसलिए कि मैं एक प्यासा पथिक हूँ। पानी खोजता हूँ किन्तु मिलता नहीं।"

"चुप रहो। इस बार चित्रा ने कहा, जो शरदकुमार की पहेली तनिक-तनिक भांप रही थी।

"क्यों ?" शरद ने पूछा।

"मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।"

"क्यों अच्छी नहीं लगतीं, क्या बता सकती हो ?"

चित्रा शान्त !

शरदकुमार की यह पहली हिम्मत थी जबकि वह अपने हृदयगत विचारों को विकट समस्या रूप में चित्रा के समक्ष उपस्थित कर सका। किन्तु उसका परिणाम शून्य होते देख वह शोक में निमग्न हो गया। तब से न जाने कितने दिन गुजर गये वह चित्रा से दृष्टि न मिला सका।

× × ×

बड़ा ही विचित्र मामला है, कुछ समझ में नहीं आता। उफ् ! चित्रा भी एक विचित्र पहेली है। बाह्य रूप में तो वह मुझसे बड़ी ममता दिखलाती है, मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं करती, मैं रूठ जाता हूं तो वह मुझे बार-बार मनाती है। किन्तु उस दिन मैंने उसके समक्ष अपने विचारों को उपस्थित किया तो वह न कर गई। फिर कैसी ममता ! क्या यह धोखा है ?

"नहीं, नहीं शरद ! यह तुम्हारी भूल है।" अनायास हृदय से कहा।

बार-बार शरदकुमार अपनी भावुकता के वशीभूत हो यही विचार सुलझा रहा था। रह-रहकर हृदय से यही स्वर निकलता —"मेरे प्रति इतनी अधिक ममता का कारण....इत्यादि।"

शरदकुमार अपनी चारपाई पर पड़े-पड़े सोच रहा था।

रात्रि की अर्द्ध घड़ियां न जाने कब व्यतीत हो गईं, उसे तनिक मालूम न हो सका।

'स्वय को क्यों फँसाता है किसी की चाह पर' अर्द्ध रात्रि की बेला में भी लोगों की निद्रा उच्चाटित करता हुआ न जाने कौन गाता जा रहा था।

"स्वयं को क्यों फँसाता है किसी की चाह पर।"

लेटे ही लेटे शरदकुमार ने उस वाक्य को दुहराया। पुनः एक-एक शब्द पर गौर करने लगा।

उसी भाव में लीन हो जाने कब वह सो गया।

पूर्व की ओर उषा का आगमन हो गया। संसार अंगड़ाई लेकर उठ गया किन्तु शरद की नींद न खुल सकी।

वह अब भी सोया ही था।

"उठिये! ज्यादा सोने से तबीयत खराब हो जाती है..." चित्रा ने दरवाजे के समीप आ पुकारा। एक ही आवाज से शरद उठ बैठा। देखा, पूनो का चन्द्रमा प्रत्यक्ष उदय हो ज्योत्सना बिखेर रहा है। तत्क्षण वह आत्म-विभोर हो गया।

"उठिए, कमरे के बाहर आइये, मुझे अभी बहुत कार्य करना है।"

"यदि न आऊँ तो!" एक मुस्कुराहट के साथ शरद ने कहा।

चित्रा चुपचाप शान्त रही।

"अच्छा मैं ही जा रही हूँ।"

दूसरे ही क्षण वह तुनक कर चली गई।

× × ×

उषा उस दिन नवीन सन्देश लेकर संसार क्षेत्र में अवतरित हो रही थी। नितान्त खुश थी चित्रा और बराबर हँस रही थी। उसके अधरोष्ठों से फूल बरस रहे थे और कपोलों पर लालिमा था

रही थी। वह दर्पण के सामने खड़ी हो अपने बिखरे केशों को सुलझा रही थी। इसी बीच उसके बदन का कपड़ा खिसक गया। पता नहीं कब हवा का झोंका आया, उदण्ड उरोज नक्षत्र की भाँति उदित हो आये और उसकी आत्मा विचित्र प्रकार से झलकने लगी।

"ओह!" अनायास ही उसे सुन पड़ा। तनिक घूमकर देखा —स्वयं शरदकुमार खड़ा था।

तत्क्षण उसकी भृकुटी चढ़ गई। शरद की ऐसी ढिठाई देख वह तिलमिला गई।

"इस तरह किसी कमरे में नहीं आना चाहिए।" बोली वह।

"माफ कीजियेगा! मैंने सभ्यता नहीं सीखी। यह लीजिये, मैं बाहर हुआ जाता हूँ।" दरवाजा लाँघ वह बाहर हो गया।

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ!" शरदकुमार ने बाहर जा पुनः पुकारा।

"........"

"क्या मैं आ सकता हूँ।"

"जरूर आ सकते हो!" इस बार चित्रा ने कहा जो अब तक अपने कपड़े यथोचित रूप से ठीक कर चुकी थी।

दूसरे ही क्षण शरदकुमार कमरे में प्रवेश कर उसकी बगल में खड़ा हो गया।

"चित्रा!" तनिक गम्भीर भाव से कहा उसने।

चित्रा चुप रही।

"बोलो चित्रा! क्या तुम इतनी नाराज हो गई हो कि एक शब्द भी नहीं बोल सकती!" शरदकुमार ने कहा।

वह शान्त रही।

"देखो चित्रा, जरा खिड़की के उस पार देखो, कितनी वेग से धारा फूट रही है। हाहाकार करती चली आ रही है।"

"वेग से हाहाकार करती चली आ रही है।" धीरे-धीरे उसके मुख से निकल पड़ा—"कौन वेग से आ रही है?"

"आ रही है, अफसोस है चित्रा जो अभी तक तुम्हें नहीं दिखलाई पड़ी।" शरद ने कहा।

दूसरे ही क्षण चित्रा ने घूर-घूर कर देखा किन्तु कुछ भी दिखाई न पड़ा। हृदय पर एक हूक-सी छा गई।

"क्या पागल हो गये हो शरद!" वह बोली।

"तुम ऐसे उसे नहीं देख सकती। अच्छा इधर आओ, मैं तुम्हें दिखलाऊँ।" अपनी ओर चित्रा को खींचते हुए शरद ने कहा।

चित्रा, बेचारी चित्रा बेसुध ही शरद के बाहुपाश में आ गई। दूसरे ही क्षण शरद ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"यह देखो चित्रा! यही धारा है जो वेग से हाहाकार करती हुई बहती आ रही है।"

चित्रा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, बोली—"क्या यही धारा है? यह तो मैं स्वयं ही हूं।"

"हां चित्रा! तुम्हीं वह वेगवती धारा और अथाह जलराशि हो। नदी, तालाब सब कुछ तुम्हीं हो।"

"और तुम?" भावावेश में वह बोल पड़ी।

"मैं हूं एक प्यासा पथिक! जिसे एक बूंद पानी से भेंट न हो सकी।"

दूसरे ही क्षण शरदकुमार न जाने क्या करना चाहता था किन्तु चित्रा उसके वक्ष से छलक गई।

"देखो, यह ठिठोली मुझे नहीं भाती।"

"क्यों ? क्या बतला सकती हो ?"

चित्रा चुप रही।

"बोलो चित्रा ? क्या तुम बतला सकती हो ?"

"जरूर, किन्तु अभी नहीं।"

"आखिर कब ?"

"समय आने पर स्वयं सब कुछ मालूम हो जायगा।"

शरदकुमार एक विचित्र स्थिति में पड़ गया। चित्रा की बातें एक गम्भीर पहेली-सी उसे लगीं किन्तु वह कुछ भी न समझ सका। उसके निराश हृदय पर 'समय आने पर सब कुछ मालूम हो जायगा' वाक्य की लकीर खिंच गई जिसे वह भूल न सका।

"यहाँ से जाइए, खड़े होकर क्या सोच रहे हैं ?" चित्रा ने कहा।

"इतनी बेरहमी....इतनी...संगदिली ?"

"दुनिया ही संगदिल है शरद ! जिसका अनुभव अभी तुम्हें नहीं हुआ है।" वह बोली।

दूसरे ही क्षण शरद एक विचित्र उलझन लिए प्रकोष्ठ के बाहर हो गया।

× × ×

अपने पिता के ड्रॉइंग रूम की आलमारी खोलकर शरद कुमार न जाने कौन-सी वस्तु खोज रहा था। एक तरफ से किताबों की कतारें हटाता दूसरी तरफ रखता जाता था। इसी भाँति कार्य में वह व्यस्त था। थोड़ी देर बाद एक लम्बी साँस लेते हुए उसने वह आलमारी बन्द कर दी और दूसरी खोली। पहली ही पुस्तक उठाकर उलटा था कि एक चमकता हुआ कागज जमीन पर गिर

पढ़ा। देखा, ऊपर लिखा हुआ था।

'विश्वासघाती मदन !....' देखते ही शरद के पैरों की जमीन खिसक गई। पुनः आगे की पंक्ति देखा—

"मैं एक ग्रामीण कन्या थी। पुरुषों की छल-छिद्र से भरी बातें, उनके हृदय की कठोरता, पुरुष समाज की सङ्गदिली एवं निष्ठुरता क्या जानती थी। लाचार तुम्हारे बहकावे पड़कर अपना सुनहला संसार छोड़ दी। जब तुमने मेरी दुनिया लूट ली, मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया, मेरे गर्भ का नौवाँ महीना चल रहा था, तुम मुझे सुप्तावस्था में छोड़ चोरों की भाँति भाग आये। सुबह सोकर उठने पर मुझे यह मालूम हुआ। यदि मैं चाहती तो फौरन पीछा करती। किन्तु मैं किसी का जीवन बर्बाद करना नहीं चाहती थी। सोच लिया, मेरी किस्मत में 'सदमये दागे जिगर' ही था फिर क्यों किसी की दुनिया वीरान करूँ।

किन्तु निष्ठुर मदन ! यह निश्चय समझना कि जिस दारुण व्यथा में मैं जल-जल कर भस्म हो रही हूँ, उससे अधिक व्यथा तुम्हें पृथ्वी से दूर परलोक में सहन करनी पड़ेगी। तुम्हारा ही सर्वस्व दोष नहीं है मदन, उसमें मेरा भी दोष है। मेरी बर्बादी का कारण था पिताजी का अन्धविश्वास, बूढ़े पति का भयानक अत्याचार, मेरी वासना की उमंग और सबसे प्रधान कारण थी तुम्हारी छल-छिद्र से भरी बातें। इन्हीं कारणों से वैभवशालिनी कमला आज कुत्ते की मौत मर रही है। दाने-दाने को तड़प रही है।

यदि चाहती तो उस समय स्वयं भागीरथी में कूद अपना जीवन समाप्त कर देती, किन्तु अपने कलङ्क के साथ-साथ मैं एक शिशु का जीवन बर्बाद करना नहीं चाहती थी। इसी सन्तान का, कलंकित सन्तान का मुंह देखना चाहती थी। इसी कारण मैं जीवित रही।

फिर क्षुधा पालन अनिवार्य था। लाचार वह कार्य करने पर तैयार हुई जिसकी जीवन में इच्छा न थी।

किन्तु दैव संयोग से मेरी वह कांक्षा आज पूर्ण हो गई। गर्भ स्थित बालक पुष्ट होकर सूर्य की प्रथम किरण देखा। मैंने उसका मुख चूम लिया! जीने की साध थी ही नहीं। तुम्हारी भांति मैं बेवफा बन जीवन व्यतीत करने से अच्छी मौत समझती थी। लाचार उस बालक के गले में ताबीज बांध (जिस पर यह निशान खुदा है) दिया कि शायद वह अपने जीवन में कठोर हृदय पिता को पा जाय और पासवर्ती गांव में एक दम्पत्ति को तत्क्षण सौंप दिया। दूसरे ही क्षण मैं कल्लोल करनेवाली भागीरथी को शान्तिदायिनी गोद में थी।

"ओफ!' एक लम्बी चीख शरदकुमार के मुख से निकल पड़ी। इसके आगे वह एक शब्द भी न पढ़ सका। वह कागज जमीन पर गिर पड़ा।

"मेरे पिताजी, कठोर हृदय....इतने पापात्मा हैं, हे भगवान्।"

वह घबरा गया और अपनी सुध बुध भूल गया। रात भर वह सोचता ही रह गया....कहाँ होगा वह बालक, मेरी ही भांति वह भी बड़ा हो गया होगा, क्या करता होगा....पिताजी ने ऐसा किया ही क्यों....?

सबेरे ही वह अपने शयनागार से बाहर आया और चबूतरे पर कुर्सी लगा वही बातें सोचने लगा। कमला का पत्र अब भी उसकी जेब में था।

"खड़ा द्वार पर तुम्हारे भिक्षुक दया दान कुछ पा जाये।
श्रीमान् के चरणरजों को चूमें अपने घर जाये।"

किसी की सुमधुर वाणी से सुन पड़ा उसे। उसकी भावना लड़ी टूट गई। तनिक दृष्टि उठाकर देखा, फटे-चिथड़े कपड़े को

वचन पर धारण किए एक आदमी खड़ा था जिसकी आँखें दया की भीख माँग रही थीं, जिसके अधरोष्ठों पर विवशता कल्लोल कर रही थी।

शरदकुमार के हृदय में गरीबों के प्रति असीम ममता भी निहित थी। वह उनके दुःख दूर करने के लिए अपने जीवन की बलि देने को तैयार रहता था। किन्तु आज वही हृदय पाषाण से भी कठोर हो गया। जिस दीन वाणी से वह पिघल जाता था, आज उसी दीन वाणी ने उसके हृदय में खिन्नता उत्पन्न कर दी और चेहरे पर क्रोध की आभा छा गई।

"जा, यहाँ से चला जा।"

"बाबूजी! एक पैसा, बड़ी भूख लगी है।"

"जा भाग यहाँ से...." तनिक क्रुद्ध हो शरद ने कहा—'जा, जाता है या नहीं चांडाल! सबेरा हुआ, दरवाजा घेर लिया। क्या यहाँ पर पैसा रक्खा है?"

"बाबूजी! परमात्मा आपको इसके बदले हजार पैसा देगा। यह फूल मुँह से न वर्षाइये, मुझे निराश न करिए। मैं बहुत दुखी आदमी हूँ। आज दो दिन से बिना खाये हूँ।..."

उसकी इतनी सुमधुर वाणी वहाँ भीतर सुन पड़ी, जहाँ चित्रा बैठी हुई नाश्ते का प्रबन्ध कर रही थी।

सुनते ही उसके हृदय में हूक-सी लगी, वह बाहर चल पड़ी।

"चुप....अगर एक शब्द भी कहेगा तो...." शरद ने कहा।

"बाबूजी!..."

शरद का दिमाग भन्ना गया, वह कँगले की बातों से खीझ गया। चट....चट...दो तमाचे उसके गाल पर लगा बाँह पकड़ कर उसे सड़क की ओर ढकेल दिया।

ठीक उसी समय लारी आ गई। उसे गहरा झटका लग गया और लारी सन्न से निकल गई।

भँगते को लारी से टकराते देख शरद के मुख से एक चीख निकल पड़ी। उसकी आँखें बन्द हो गईं। ठीक उसी समय चित्रा बाहरी दरवाजे पर आई।

"क्या है शरद बाबू! कौन इतना दर्दीला गाना गा रहा था?"

"कोई नहीं! एक भिखारी था।"

"कहाँ गया?" चित्रा ने पूछा।

"क्षण-मात्र को मेरी दृष्टि बन्द हो गई। खोलने पर वह दिखाई नहीं पड़ा, जाने कहाँ चला गया।"

"ओफ्?" दूसरे ही क्षण वह भीतर हो गई।

पुनः शरद कुछ सोचने लगा। यह तो शायद वही था जिसे हम लोग कार से लाये थे। जो बार-बार अनुरोध करने पर भी घर नहीं आया था।

आखिर वह कहाँ गया। तत्क्षण अज्ञात भावना हृदय में पैदा हुई—वही है....वही....जीवन....हाँ, हाँ जीवन ही है। पत्र में तो शायद जीवन ही लिखा है। मुझे ठीक याद है।

प्रिय जीवन!

जीवन की कांक्षाएं अधूरी रह गयीं।

वाक्य को चित्रा ने सुना जो बगल ही में किवाड़ की ओट में थी। एक गहरी हूक-सो लगी।

न जाने कितने दिनों की विस्मृति याद हो गई।

"ठहरो ...ठहरो....ओ भिखारी, ठहरो...." कहता हुआ शरद दौड़ा जा रहा था।

उसने तनिक घूमकर देखा पुनः और तेजी से भागा, न जाने

क्यों ? शरद ने बहुत पुकारा किन्तु वह न ठहरा । लाचार वह वापस लौट आया ?

"नहीं मिल सका ।" चित्रा ने पूछा ।

"नहीं...." शरद ने कहा ।

शरद के महल में चित्रा गृहलक्ष्मी की भाँति शोभित थी किन्तु उसी दिन से वह बहुत चिन्तित-सी रहने लगी । रह-रह कर उसी अभागे जीवन की याद उसे सताने लगी । वह भयानक चिन्ता में भस्म होने लगी ।

उसके हृदय-पट पर द्वन्द्वयुद्ध मचा रहता । वैभव से सम्पन्न महल की हर ईंट उसके साथ मजाक करने लगी । रात-दिन हृदय में एक अपूर्व कांक्षा धू-धू कर जलने लगी । उसका मन छटपटाने लगा । काश ! किसी भांति यहाँ से भाग पाती और वहाँ पहुंच जाती जहाँ जीवन की पहली अवस्था बीत चुकी है ।

रह-रहकर उसे जीवन की याद जलाने लगी, उसने उसे खुश रखने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी । सोचने लगती, वह उसे कितना चाहता था । वे दोनों वहाँ कितने सुख के साथ रहते और हृदय की उलझन सुलझाते थे । किन्तु किस्मत उन दोनों के साथ गहरा मजाक खेल गई ।

सोचते ही सोचते वह नमक की भाँति गलने लगी ।

× × ×

शरद का विचित्र हाल हो रहा था—'वह दिन-रात घुलती क्यों जा रही है?"—रात-दिन यही फिक्र उसे जलाने लगी । यही उसकी परेशानी का एकमात्र कारण था जिसे कोई जान न सका ।

चित्रा सोचती —"ओफ ! मेरे बदन में तो आग लगी ही है,

यह बेचारा शरद भी पतिंगे की भाँति भस्म होने के लिए समीप पहुँचता जा रहा है। कितना अन्धकारमय है शरद तुम्हारा भविष्य जो स्वयं तुम्हारे चेहरे पर झलक रहा है ?"

देखते ही चित्रा रोने लगती, मुँह से श्वांस निकलती—"तुम भी मेरे साथ बर्बाद होना चाहते हो ?"

उसकी बिगड़ती अवस्था का अनुभव सभी ने किया, किन्तु विशेष चिन्ता शरद ही को थी, इसलिए कि वह उसे सच्चे हृदय से प्यार करता था। उसने उसके मन बहलाव के लिए कोई कसर उठा नहीं रखी, किन्तु नियति-चक्र ही और था। वह क्या करे ? इसी कारण उस पर सतत आक्रमण करनेवाली चिन्ता तनिक दूर न हो सकी ? अपने को असफल पा शरद की तबीयत उद्विग्न-सी रहने लगी। दिन-रात कमरे में लेटा रहता। सन्ध्या समय घूमना तक उसने छोड़ दिया।

इतने परिवर्तन का कारण ? रात-दिन यही सोचने में वह लीन रहता। किन्तु कोई जवाब नहीं ढूँढ़ सका।

चित्रा की अवस्था ठीक न रहती। कभी पिताजी की याद, कभी अभागे जीवन की जलन से ऊब कर सोचती-यहाँ से भाग जाना ही ठीक है, किन्तु जाय कहाँ। हृदय कहता, यहाँ से दूर जहाँ चिन्ता का नाम नहीं, सुख-दुख का स्थान नहीं। किन्तु स्वच्छन्दता रहते हुए भी वह न भाग सकी।

इसी उलझन में वह गालों पर हाथ धरे बैठी थी। बड़ी हिम्मत करके उस दिन शरदकुमार ने कहा—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं हो रही है चित्रा ! तुम दिन पर दिन क्यों सूखती जा रही हो ? क्या बता सकती हो अपनी चिन्ता का कारण?"

कनखियों से उसने तनिक शरद की ओर देखा।

"बोलो चित्रा ! मेरी बातों जवाब दो ?"

वह शान्त रही।

"देखो, तनिक मेरी ओर देखो चित्रा ! तुम्हारी ही चिन्ता के कारण मैं अधमरा होता जा रहा हूँ ! आह, मैं कितना प्यासा पथिक हूँ। किन्तु तुम हाथ में पानी रहते हुए भी मुझे पिलाना नहीं चाहती हो। अपनी चिन्ता का कारण भी नहीं बताती हो कि मैं उसे किसी न किसी प्रकार दूर कर सकूँ।"

चित्रा शान्त ही रही।

दूसरे शब्दों में उसकी धारणा ही दूसरी थी—वह लाचार थी, किस मुँह से बतलाये अपनी चिन्ता कारण।

× × ×

शरदकुमार ने उसकी अवस्था ठीक करने की बहुत कोशिश की किन्तु वह दिन पर दिन गिरती ही गई। दोनों में घोर परिवर्तन हो गया। एक ही मकान में रहते हुए भी वे एक दूसरे बहुत कम बोलते।

उसे रह-रहकर जीवन की छाया झलकने लगी। मस्तिष्क में चक्करदार घटनाएँ घूमने लगीं। कभी-कभी अर्द्धरात्रि में जब उसकी निद्रा खुल जाती, उस समय उसका हृदय विचलित हो जाता, मुँह से निकल पड़ता—

"न जाने किधर आज मेरी नाव चली रे ?..."

उस दिन चित्रा की अवस्था कुछ ठीक-सी थी। इसी कारण वह उषाकाल के बहुत पहले उठी और उद्यान की ओर बढ़ गई। मंदिरों से घण्टों की ध्वनि प्रभात की निस्तब्धता भङ्ग करती हुई मीना-मीना स्वर उत्पन्न कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई, नवयुवती चित्रा रेखा की, धुँधले मुखवाला मयंक और

लाली फेंकनेवाली उषा को अमिट छाप अभी स्पष्ट रूप से न झलका सकी थी। वह उद्यान में पहुँच गई और गुल चुनने लगी।

इतनी कड़ी सर्दी में वह वाटिका स्थित चौकोर पत्थर पर लताकुंज के नीचे बैठ गई और दूर से घड़ियालों की ध्वनि के साथ अपनी ध्वनि मिलाने लगी। उसके जागरण में एक नवीन मुस्कान व्याप्त थी और अपने-अपने बसेरे से निकले हुए पंछियों के कलरव में एक नैसर्गिक कविता का भास होता था। वह ध्यान में तन्मय हो उसे सुन रही थी और सोच रही थी—"इन क्षुद्र जीवों को जीवन का उल्लास क्यों है? संसार क्षेत्र में पुनः अवतरित होने की इतनी प्रबल इच्छा क्यों है।

ओफ! दो-दो दाने बीनकर लाने और जीवन को इतना लम्बा बनाने की प्रबल कांक्षा, इन छोटी-छोटी चिड़ियों को क्यों हैं? इतना उत्साह, इतनी तन्मता, क्या वास्तव में जीवन इतने सुख की सामग्री है?"

टप....टप....टप...कर कई बूंदें अकस्मात उसके ऊपर गिर पड़ीं। तत्क्षण वह चौंक गई और तनिक घूमकर देखी, किन्तु कुछ दिखाई न पड़ा। ह....ह....ह...का एक ठहाका गूंज उठा।

इस बार उसने ध्यान से देखा, लता के उस पार शरदकुमार पानी लिए हुए, दूसरे हाथ से दांतों को मल रहा था।

"ओफ हो! तुम हो...." चित्रा ने हँसते हुए कहा।

"तुमने तो समझा होगा बिना बादलों की यह बर्षा कैसी?...."

"जरूर, मुझे आश्चर्य हुआ और है भी यह आश्चर्य की बात?"

"चित्रा?" वह तनिक मुस्कुराहट के साथ बोला—"पक्षियां कितना मधुर राग अलाप रही हैं?"

"तो फिर..."

"तुम भी गाओ चित्रा ?"

चित्रा कुछ न बोली !

"क्या तुम्हें गाना नहीं आता ?" शरद ने पूछा।

"आता है शरद ! पर मैं गाना नहीं चाहती।"

"क्यों, क्यों नहीं गाना चाहती हो, बोलो ?"

"मेरा दिल ही न जाने क्यों कुछ करने को नहीं चाहता।"

"कुछ भी नहीं ?" शरद ने जोर देकर पूछा।

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं...बल्कि संसार कुछ करने योग्य है ही नहीं।"

"फिर संसार में न रहा जाय, क्यों ठीक है नऽ ?" उल्लास भरे शब्दों में उसने कहा।

"इसका यह मतलब नहीं, बल्कि मेरा उद्देश्य यह है कि मदारी की अपेक्षा दर्शक बनकर रहना ही ठीक है।"

"किन्तु मैं तो मदारी ही बनकर रहना चाहता हूँ चित्रा !"

"यह तो अपनी-अपनी इच्छा है। आप अभिनय करना चाहते हैं तो करिये, किन्तु सभी के अभिनय सभी को पसन्द नहीं होते।"

"उँह, होगी कोई बात, छोड़ो इन पचड़ों को। तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी।" शरद ने कहा।

"बोलो !"

"मेरी इच्छा है चित्रा ! आज तुम एक गाना गाओ।"

चित्रा क्षणिक ही मौन रही। दूसरे ही पल उसने गाया—

किसको कहता है पगले तू अपना;
प्रेम की दुनिया का झूठा है सपना
जिनकी किस्मत काँटों के बीच पली रे।

उसकी मधुर स्वर लहरी में शरद का प्यासा हृदय व्याकुल हो

उठा। उस समय शरद की धमनियों में बौखलाहट होने लगी थी। समन्वय रूप से दोनों तन्मय थे। वह गाने में और वह उसको ... ऊपर से वायु का झोंका सुधा-जल छिड़क रहा था।

"चित्रा! आज तुम बहुत अच्छी साड़ी पहनी हो...बड़ी सुन्दर झलक रही हो।" शरदकुमार ने गाना समाप्त होते ही कहा।

चित्रा चुप!

शरदकुमार की न जाने कितनी ऐसी बातें थी जो उसके हृदय में क्षोभ, एक प्रकार का रोष पैदा कर देती थीं किन्तु उसके न जाने कितने उपकार स्वयं पर थे इसी कारण वह शान्त रहती और अपना उबाल सह लेती, पर शरद को कुछ न कहती।

"चित्रा! एक दिन तुमने कहा था, मुझे जिस बात की आवश्यकता होगी वह तुम....बोलो, याद है या भूल गई वह प्रतिज्ञा!"

इस बार शरद की बातों ने उसके हृदय को उद्विग्न कर दिया। वह टकटकी लगा शरद की ओर देखने लगी।

"चित्रा! मुझे प्यास लगी है, क्या मेरी क्षुधा शान्त कर सकती हो? मैं तुम्हारे..." गहराई का भाव दिखलाते हुए उसने कहा।

चित्रा तनिक अपने स्थान से उठी।

"ठहरो, ठहरो चित्रा! उस पानी से प्यास नहीं जा सकती।"

"तो फिर...." रूखेपन से उसने कहा।

शरद को एक ठोकर-सी लगी।

"शरद! यह तुम्हारी भूल है। किसी अन्य गृह में एक दासी बनकर रहना भी शायद...."

"हैं दासी, तुम दासी हो चित्रा! तुम्हीं तो मेरी सर्वस्व हो। मैं अपना हृदय चीर कर दिखा सकता। आज अपना विचार दे रहा हूं। तुम दासी नहीं मेरी हृदय अधिकारिणी हो।

मेरी आराध्य देवी हो चित्रा !" शरद ने कहा।

उसके स्वर में कोमलता के साथ-साथ उत्तेजना भी थी।

"ठीक है शरद ! मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है। परन्तु मैं... मैं पतित हो चुकी हूँ.... मुझे...."

"चित्रा ! घर लाने के पहिले ही मैंने समझा था—तुम पतित हो ! किन्तु पतितावस्था में भी मैं तुम्हें निर्मल यमुना जल की भाँति पवित्र देख रहा हूँ।"

"शरद ! किसी के हृदय की व्याकुलता, उष्णता, किसी के यौवन की उमङ्ग मैं सब कुछ झेल चुकी हूँ। अब उसकी साध नहीं है। उससे अलग होना चाहती हूँ। मेरी ओर देखो, मैं दया की पात्री हूँ और तुम्हारे जैसे सहृदय व्यक्ति की होना चाहती हूँ एक बहन ! है तुम्हारे पास इतनी निःस्वार्थ स्नेह सम्पत्ति जो मुझे दे सको ?"

दूसरे ही क्षण उसकी आँखें गीली हो गईं।

"बोलो शरद ! चुप क्यों हो गए ?"

शरद शान्त !

उसकी विचित्र हालत हो गई थी, लज्जा से दबा जा रहा था वह...अपने आप में सिमटा जा रहा था।

वह अचानक थप्पड़ खाये व्यक्ति की भाँति घूम पड़ा और मैं, मैं कहता हुआ कमरे के बाहर हो गया।

× × ×

अपने हृदयगत विचारों को सोच और चित्रा के व्यवहारों को देख शरदकुमार अवश्य झेंप जाता, फिर भी वह उसके लिए व्याकुल रहता। उसका हृदय चित्रा से कुछ और ही प्राप्त करना चाहता था।

था। किन्तु दिल बराबर कहता—"नहीं, ऐसा नहीं शरदकुमार !"

फिर भी उससे रहा नहीं जाता। उसने अपने को बार-बार कसौटी पर कसने की कोशिश की, किन्तु सफल न हो सका। वह उसे चाहता ही रहता। जब कभी वह दूसरी ओर देखती रहती वह स्वयं घूम-घूम कर देखता और जब वह देखने लगती तो तनिक झेंप जाता। उसके इस भाव को चित्रा ने न जाने कितनी बार रिमार्क किया। वह शरद की दृष्टि में एक प्यास छिपी देखती।

उसका हृदय मोम की भाँति पिघल जाता। यद्यपि वह ऐसी न जाने कितनी प्यास शान्त कर सकती थी। उसे प्रणय-दान देकर खुश कर सकती थी, उसके जीवन-मरण के प्रश्न को हल कर सकती थी, परन्तु उस ओर उसकी आन्तरिक इच्छा न थी। इसलिए कि उसने प्रणय के स्थान पर उसके लिए अनुग्रह कृपा का द्वार खोल दिया था।

इधर शरद अपनी भावना के वशीभूत हो उसे अपनी अङ्कशायिनी बनाना चाहता था। इसी कारण आज वह तड़के ही उठकर बगीचे में गया। जहाँ पर चित्रा बैठी हुई गुल चुन रही थी।

आज वह चित्रा से शादी करने का प्रस्ताव लेकर गया था किन्तु वहाँ की बातों से ब्याह के स्थान पर कृतज्ञता के भाव समा गये। हृदय कहने लगा—"इस देवी के श्री चरणों पर अनेकों हृदयों के समस्त पुष्प बिखेर दें। वास्तव में चित्रा बहुत उच्च रमणी है।"

अपने कमरे में अकेले रहते हुए भी लज्जित होने लगा वह।

"मेरी बातें क्या तुम्हें ठीक नहीं लगीं शरद ! क्यों वहाँ से चुपचाप भाग आये।" कमरे में पहुँचकर चित्रा ने कहा।

"नहीं चित्रा ! तुम्हारी बातें सत्य हैं।"

"तो फिर क्यों भाग आये ? क्या तुम्हें मेरी ही भाँति आत्मग्लानि उत्पन्न हुई ?"

शरद चुप था।

"बोलो शरद ! मैं जानती हूँ तुम आदर्श हृदय हो।"

"चित्रा ! सच कहता हूँ, जी चाहता है डूब मरूँ। बड़ी गहरी आत्मग्लानि पैदा हो रही है। यह ग्लानि तुम्हारी ममता में एक टुकड़ा भी नहीं है। जिस हृदय की तुम प्रशंसा कर रही हो वह नितान्त दुर्भावनाओं से भरा हुआ जमघट है। उसकी यह भयंकर नीचता का प्रमाण है चित्रा ! कि जो वस्तु सर्वथा पूजा की सामग्री थी उसे वह विलास की सामग्री बनाना चाहता था। फिर भी जिसमें इतनी जलन, इतनी व्यथा, इतनी वेदना भरी है उसमें अवश्य एक विचित्र सुख होगा।"

"शान्त रहो शरद ! तुम्हारा मतलब मैं भलीभाँति समझती हूँ। किन्तु इतना अधीर होने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम, वासनाओं का दास है। इसमें फँसना नई बात नहीं है। यह तो सदैव से होता आया है। किन्तु इसमें वीरता, पुरुषत्व अथवा मनुष्यता नहीं। मनुष्यत्व तो इसमें है कि वह इन कीटाणुओं पर विजय पाये। इसलिए आओ, इस पर हम-तुम विजय पाने की प्रतिज्ञा करें।"

"प्रतिज्ञा करना तो ठीक है चित्रा ! पर वह प्राप्त किस भाँति होगी।"

"सतत परिश्रम और निरन्तर आत्म-त्याग द्वारा।"

"अच्छा, मैं वही करूँगा, पर यह तो बतलाओ, यह चाहना पुनः क्यों उसी भाँति बनी है ?"

"चाहना बनी है तो क्या बुरा, यह तो होना ही चाहिए ? जिसका हृदय भावुक होता है वहीं सौन्दर्य का, प्यार का मूल्य जानता है।"

"तो तुम उसकी निन्दा क्यों कर रही हो चित्रा !" शरद ने

तनिक हँसकर कहा।

"मैं निन्दा नहीं करती हूँ, बल्कि तुम मेरा मतलब समझे नहीं। यह चाहना बुरी नहीं है....बुरी है उसके गर्भ में निहित वासना, उसमें निवास करनेवाली स्वार्थपरता। इसलिए उसको निकाल देना ही श्रेयस्कर है। चाह, निन्दनीय नहीं, क्यों आया समझ में ?"

"नहीं !...." शरद ने कहा जो वास्तव में उसके उद्देश्य को अब तक न समझ सका था।

'मेरे साथ आओ, तुम्हें प्रत्यक्ष दिखला दूँ।"

दूसरे ही क्षण वह शरद को लिए हुए उद्यान की ओर चली गई और लताकुंज के नीचे बैठकर कहने लगी—"उस गुलाब की टहनी की ओर देखो जहाँ फूल अर्धविकसित है। कितना अच्छा लगता है वह स्थान। हरे-हरे पत्तों के बीच वह पुष्प कितना-मुग्धकारी मालूम हो रहा है। उसके पास ही दो-चार मधु-लोलुप भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। देखो, यह एक प्राकृतिक दृश्य है। कितना सुन्दर प्रतीत हो रहा है। इसे देख जिसका दिल न खिंच जाये वह मनुष्य नहीं वरन् राक्षस और हृदय-शन्य व्यक्ति है।"

दूसरे ही क्षण उसने लपककर फूल को तोड़ लिया और बोली—

"देखो, पुनः वहाँ देखो जहाँ यह कली थी। कितना फीका, उजाड़-सा लग रहा है वह स्थान ? गौर से देखो, अब वहाँ भ्रमर भी नहीं रह सके। वे दूसरे गुल के पास चले गये।

यह कली खिलने के पहले ही ठुकराने योग्य हो गई। जिस सुन्दरता के कारण मैं इसे तोड़ी वह सुन्दरता विलीन हो गई। अब इसका परिणाम देखो (वह कली को दूर बहते हुए नाले में फेंक देती है) यह मुझे प्रिय नहीं। मैंने इसे फेंक दिया। उस नाले में यह सड़ने लगी, इस पर कीड़े छा गये।

चाहना के अन्दर जो स्वार्थपरता आई, जिसके वशीभूत हो मैंने इसे तोड़ लिया, उसी का यह दुष्परिणाम है शरद, कि यह अर्धविकसित कली ठुकराने योग्य हो गयी।

अब तुम्हीं बताओ, यह निष्ठुर संगदिल हाथ, प्यार योग्य है, जिसमें इतने कठोर व्यवहार की सामर्थ्य है। क्या सौन्दर्य प्रतिमा रौंदने की है? वही सौन्दर्य-प्रेमी उचित और सराहनीय है और उसी की चाहना सही है जो सौन्दर्य की रक्षा कर सके।

परन्तु जो अपने स्वार्थ के वशीभूत हो उसे रौंदने की कांक्षा करे, तनिक से स्वार्थ के लिए नैसर्गिक छटा विध्वंस करे वह राक्षस से भी बदतर है और ऐसी चाहना भी निन्दनीय है।" उसने शरद की ओर देखा, वह लज्जा भार से दबा जा रहा था।

"इसलिए मनुष्य को ऐसी कांक्षा न करनी चाहिए। पंगु होकर हिमालय की श्रेणी पर पहुँचने की इच्छा सर्वथा निन्दनीय है।"

शरद की गर्दन झुक गई, वह लज्जा भार से दबा जा रहा था। सोचने लगा, सचमुच उसके जैसा अधम कोई न होगा।

ओफ! वह ऐसी पवित्र देवी को विलास की रंगमयी पर्णकुटी में लाकर नृत्य कराना चाहा था। छिः छिः....धिक्कार है उसे।

वह वहाँ से भागना ही चाहता था कि चित्रा ने कहा—"इतनी अधीरता शोभा नहीं देती शरद!"

"मैं हाथ जोड़ता हूँ महिमामयी! तुम्हें मेरा दिल प्रणाम करता है। मैं नर्क का कीड़ा हूँ, तुम्हारे स्पर्श योग्य नहीं।"

"ओः....ओः....इतनी आत्मप्रतारणा न करो शरद!"

"नहीं....नहीं, ऐसा न कहो देवि! मैं....मैं...."

कहता हुआ वह वहाँ से भाग आया।

• •

अर्धरात्रि भयानक रूप लेकर यावत् जगत पर व्याप्त थी। मकानों के बाहर हवा जोरों से बह रही थी।

बादल गरज रहे थे और बिजली चमक रही थी।

चित्रा का हृदय काँप गया। नेत्रों के समक्ष अन्धकार दीखने लगा। आज उसका हृदय अत्यधिक हाहाकार कर रहा था। वह सोच रही थी—उफ्! बादलों की गरज, बिजली की चमक, हवा का सनासन् झकोरा कितना भयानक लग रहा है।

किन्तु यहाँ उसे कोठरी जेल-सी प्रतीत हो रही थी। वह रह नहीं सकती। सोचते ही सोचते वह सो गई। स्वप्न में देखी,

वह स्वयं लपकते हुए पुल पर आ रही थी। दाहिनी बगल घोर ऊँची पर्वत श्रेणी, बायीं ओर गहरा गर्त, पुल के नीचे भयंकर वेग से नदी बह रही थी। पुल पर प्रेमी खड़ा बुला रहा था—

"चित्रा! चित्रा!" मुस्करा रहा था वह।

नदी बड़ी वेग से बह रही थी। बादल घिर आये, बिजली चमकी, पानी बरसा, भयंकर बाढ़ आयी। पुल टूटा और वह धड़ाम से गिर पड़ी। बह गई उसकी लहरों में और चिल्लाकर जग गई।

विस्फारित नयनों से वह देखने लगी, कहीं कोई नहीं। जीवन, अभागे जीवन की मूर्ति सामने प्रत्यक्ष कल्लोल करने लगी। स्मृतियाँ तीव्र रूप से मचलने लगीं।

धीरे-धीरे वह पलंग से उठी और खिड़की के पास आ देखने लगी। बादल के टुकड़े फट गये थे। उनकी दरार से मयंक म्लान मुख लिए झाँक रहा था। उसने आकाश के इस छोटे से खिलौने को देखा। चन्द्रमा की रोशनी से पेड़ों की टहनियाँ अपनी-अपनी परछाइयों द्वारा उसकी कल्पनाओं को रँगने लगीं। वह उपवन का दृश्य खूब जी भरकर, खुली आँखों से देख सकी क्योंकि उसकी आँखों में नींद न थी, मन में चैन न था।

न जाने क्यों उसके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी। रात्रि की नीरवता में वह साफ सुन रही थी। चान्द्र के अस्त हो जाने से आंखों के सामने अँधेरा छा गया। वह आँखें गड़ा-गड़ा कर देखने लगी। नेत्रों के समक्ष भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों अन्धकार में छिपते हुए तारों की भांति झलकने लगे। अनायास मुंह से निकल पड़ा—"कितना अच्छा था वह समय। मैं कितनी सुखी थी.... क्या हुआ मलिन वस्त्र था, मैं भीख मांगती थी....लोग हँसते थे.... मैं भी हँसती थी, संसार हँसता था। किन्तु यहाँ आकर मैं बन्धन में पड़ गई! ओफ्! अब मैं नहीं रह सकती।"

दूसरे ही क्षण दरवाजा लांघ वह बाहर आ गई।

सुप्तावस्था में शरदकुमार ने देखा—चित्रा, प्राणों से प्रिय चित्रा चुपके से भाग रही है। तत्क्षण हृदय में एक हूक-सी लगी और वह उठ बैठा। ठीक उसी समय उसने सुना—

"अब मैं नहीं रह सकती...." दूसरे ही क्षण चटाख-चटाख दरवाजा खुलने का शब्द हुआ। उसे हूक-सी लगी, प्राणों से प्रिय चित्रा भाग रही है....नहीं....नहीं....वह नहीं जा सकती। उसके बिना वह एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता।

"मैं पकड़ूँगा उसे।" तत्क्षण वह पलंग से उठा और बाहर झांककर देखा। वह आपे में न रह सका और अंधेरे में ही—"ठहरो...ठहरो?" कहता हुआ नंगे पैर दौड़ पड़ा।

बादल गरजे और बिजली के प्रकाश में एक धुंधली-सी छाया नेत्रों से दूर झलकी। वह तेजी से दौड़ा उसी छाया के लिए.... उसका सर्वस्व बिगड़ रहा था, जीवन-मौत का प्रश्न छाया हुआ था। बेतहाशा पागलों की भांति वह दौड़ा जा रहा था।

× × ×

पञ्जादुकूल पर छप्परों से आच्छादित एक टूटी-फूटी झोपड़ी स्थित थी। उसी झोपड़ी में इधर कुछ दिनों से एक कंगला आकर रहने लगा था, जिसके बदन पर हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गयी थीं।

आज उसके मस्तक पर पट्टी बंधी थी। उसकी तबीयत अन्य दिनों की अपेक्षा खराब थी। उसके हृदय में बैकलयता छा रही थी। वह उसी झोपड़ी में एक टूटी चारपाई पर पड़ा सोच रहा था—"आह, मैं भीख माँग कर खाता था, उस समय संसार में मेरा कोई नहीं था। सचमुच मैं एक हँसोड़ व्यक्ति तथा इन्द्रा के किनारे का पागल था। उस समय मैं हँसता था किन्तु उसमें बरसता न थो, उसमें किसी प्रकार का अस्तित्व न था। निरुद्देश्य भाव की हँसो धीरे-धीरे उद्देश्य रखने लगी।

सावन-भादों की हरियाली पर चित्रा प्रभातकालीन बादल बनकर छा गई। फिर मैं आनन्द विभोर हो गया। मनोहर मोर की भाँति नृत्य करने लगा और चित्रा, वह यौवन की मेघमाला बन गई। थोड़े ही समय में मेरा आहार, वेशभूषा सब कुछ बदल गया। जिसे मैंने अब समझा। वह समय बरसात की रंगीन बादलों की एक सन्ध्या थी जो शायद चन्द मिनटों में बरबाद होनेवाली थी। किन्तु मैंने समस्त शक्ति से उसे दबा दिया।

ओफ्! अब क्या होगा.... कुछ नहीं, जीवन शून्य-सा झलक रहा है! अब मैं चला, बच नहीं सकता। आह! बड़ा दर्द हो रहा है। चित्रा मुझे अवश्य फटकारती होगी, क्योंकि उसे मैंने ही हँसनेवाली से रोनेवाली बना दिया था।

कौन चित्रा! मेरी ओर आओ! मैं....मैं तुम्हें अपने शव को जलाते हुए तक बचा लूँगा। हाँ....हाँ आ जाओ, हैं मेरा शव शायद निर्जीव-सा पड़ा है—न हँसता है, न रोता। अरे....रे....

"मेरे जीवनाधार !" दूसरे ही क्षण वह बोली।

सचमुच इस समय जीवन और चित्रा एक डाली के दो फूल थे। जीवन का हृदय उल्लास से भर गया।

उसने उसे अपने अंश पाश में आबद्ध कर लिया। ठीक उसी समय झोपड़ी के दरवाजे पर एक धुंधली छाया झलक पड़ी।

"कौन ?" उसने पुकारा।

वह छाया वहीं अडिग खड़ी थी।

"कौन ?" पुनः पुकारा उसने।

"अब समझा, शायद इसी दिन के लिए तुम कहती थी, समय आने पर स्वयं मालूम होगा।" एक सर्द आह सुन पड़ी उसे।

दिल में एक दहशत-सी छा गई।

बोल उठी—"कौन....शरद !"

"हाँ चित्रा, मैं ही हूं।"

वह उन दोनों के समीप पहुँच गया।

"चित्रा ! मैंने तुम्हारा प्रेम पाने के लिए अपना हृदय निछावर कर दिया था। तुमसे कोई छिपाव नहीं करता था फिर भी तुमने मुझे ठुकरा दिया। मिट्टी के खिलौने की भाँति तोड़ दिया। किन्तु चित्रा ! तुम्हें ऐसा करना ही था तो पहले ही क्यों नहीं बतायी ? इतनी लम्बी मंजिल तय करवे के बाद तुमने दगाबाजी क्यों की ?"

"ऐसी अनगंल बातें मुंह पर न लाओ शरद भैया ! तुमसे तब भी प्रेम करती थी और अब भी....शुद्ध भागीरथी जल की भाँति मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति एक भाई के नाते था। तुम्हारी मैं एक धर्म को स्नेह की बहन बनने की आशा करती हूं....

जिस बात को मैं बता नहीं सकती थी उसे बताये दे रही हूं।

मुझे क्षमा करो। कलंकिनी बहन को क्षमा-दान दो! क्या एक छोटी-सी स्नेह सम्पत्ति तुम नहीं दे सकते?"

"देता हूँ बहन!" न जाने किस भावावेश में निकल पड़ा शरद के मुँह से। वह चित्रा के पैरों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़ क्षमा माँगने लगा। वहाँ से निकलते समय उनकी दृष्टि उस धागे पर पड़ गई जो पहले ही जीवन के गले से टूट कर गिरा था।

उसने लपक कर उसे उठा लिया।

× × ×

"चित्रा! चलो, यहाँ से दूर क्षितिज के पास चलें जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले हुए हैं। जहाँ दुख का, समाज की संकीर्णता और लोकाचार का आडम्बर न हो! क्या तुम तैयार हो?"

"चलो मेरे जीवनाधार! मैं चलने के लिए तैयार हूँ। तुम जहाँ भी कहो मैं चलूँगी।"

वे दोनों उठे और झोपड़ी के बाहर निकल आये। तट पर एक सुनहली नौका बँधी थी! भादों का महीना, जवानी भरी जोशीली लहरें, वायु का तीव्र झोंका, कूल का कहीं पता नहीं, चारों ओर अगम जलराशि, उसी बीच नौका दोनों को लेकर चल पड़ी।

× × ×

घर पहुँचते ही शरदकुमार ने उस ताबीज को तोड़ डाला। जो अभी-अभी गंगाकूल पर झोपड़ी में मिली थी। उसमें एक कागज का टुकड़ा था। भावावेश में उसने पढ़ा—

"यह बालक कमला के गर्भ से पैदा होने वाला पैराडाइज होटल के अधीश्वर सेठ मदनलाल के गुप्त प्रेम का परिणाम है। गर्भ का नवाँ महीना जब चल रहा था तो उन्होंने मुझे त्याग दिया, मैं कुल कलंकिनी पापिष्ठा थी, इसी कारण दुनिया में मुँह न दिखा

सकी और बालक के गले में तावीज बांध दिया। सोचा, शायद भविष्य में यह अपने अभागे पिता को पा सके।"

शरद का दिमाग मन्ना गया। अतीत की बातें याद आने लगीं। कमला का पिछला पत्र अब भी उसकी जेब में था।

निकाल कर देखा, वही चिन्ह, वही लिखावट थी।

"तो क्या यही अभागिनी कमला का पुत्र मेरा ज्येष्ठ भाई है।" अनायास मुँह से निकल पड़ा। वह आँखें मूंद सोचने लगा।

ठीक उसी समय उसके पिताजी ने कमरे में प्रवेश किया। पास पहुँचते ही उन्होंने मेज पर पड़े उस कागज को देखा। उसे पढ़ वे आपे में न रह सके और एक प्रकार की ममता उत्पन्न हो जाने के कारण बोले—

"शरद....शरद....कहाँ है वह बालक ?"

शरद ने आँखें खोली, देखा पिताजी की श्वांस फूल रही थी।

"बोलो शरद, कहाँ हैं वह मेरा प्यारा पुत्र ?"

"गंगाजी के किनारे, घाट की बगलवाली झोपड़ी में।"

दूसरे ही क्षण पिताजी उसी ओर दौड़ पड़े, जहाँ पर वह झोपड़ी निर्मित थी।

× × ×

शरदकुमार आपे में न रह सका। चित्रा की याद अब भी उसे सता रही थी। उसकी सुनहली मूर्ति आँखों के सामने झूल रही थी। वह ममताधिक्य के कारण चित्रा-प्रकोष्ठ की ओर बढ़ गया। अन्दर जाकर देखा, सर्वत्र नीरवता....केवल उसकी शैय्या पर एक कागज फड़फड़ा रहा था। उसने उठा कर पढ़ा, लिखा था—

मेरे अच्छे शरद भैया !

उसका नाम जीवन था। वह इन्द्रानुकूल पर रहता था। न जाने कौन-सा आकर्षण उसकी आँखों में निहित था जिसे देखते ही

स्वयं को उसपर निछावर कर दी। नियति ने हमदोनों को मिला दिया किन्तु समाज ने अपनी संगदिली के कारण मेरी आबाद होने वाली दुनिया में आग लगा दी। पिताजी ने अत्याचार किया।

लाचार वह मुझसे बिछुड़ गया।

मैं चुपके से उद्भ्रान्त पथिक की भांति उसे खोजने घर से निकल पड़ी। घूमते-घूमते तुम्हारे हाथ पड़ गई। फिर न जाने कितने दिन बीत गये किन्तु मैं उसे न भूल सकी। इस बीच तुमने अपने हृदयगत विचारों को न जाने कितनी बार मेरे समक्ष उपस्थित किया। मैंने भी प्रेमाधिक्य के कारण सभी का सत्कार किया, किन्तु उसे मान न सकी। इसलिए कि तुम्हारे साथ मेरा प्रेम एक भाई की भांति था और मैं तुमसे यही भीख मांगती थी।

ईश्वर जाने तुमने वह भीख मुझे दी या नहीं। मैं तुम्हें सच्चे हृदय से भाई मानती हूं। शायद इस जीवन में तुमसे पुनः भेंट न हो सकेगी। पिताजी, माताजी से प्रणाम कहना।

मुझे क्षमा करना भैया शरद! बस, अब बिदा स्वीकार करो।

तुम्हारी धर्म की एक बहन
चित्रा

पत्र पढ़ते ही शरदकुमार झेंप गया। उसे इस जीवन से एक घृणा-सी उत्पन्न हो गई। दूसरे ही क्षण उसने निश्चय कर लिया। अब वह यहां नहीं रह सकता। तत्क्षण कलम उठा लिखने लगा—

पूज्य पिताजी!

आपने कई बार मेरी गिरती दशा देख चिन्ता का कारण पूछा था पर उस समय मैं लाचार था। किस मुंह से बतलाता कि चित्रा ही मेरे प्राणों का एकमात्र आधार है। उसी के ऊपर मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। कैसे बतलाता कि चित्रा से प्रेम करता हूं, उसी के कारण नमक की भांति घुल रहा हूं।

दूसरा कारण और गजब ढा रहा था पिताजी! वह और कोई बात नहीं, केवल आपकी कार्यप्रणाली थी। अतीत काल की

वैभवशालिनी कमला की दशा सोच-सोच कर मैं और अधमरा होता जा रहा था। लज्जावश मैं आप से न कह सकता था। किन्तु आज मैं सब बतलाये दे रहा हूँ। यही उलझन मेरे जीवन पर थी पिताजी, जिसके कारण मैं....

पिताजी, मेरे जीवन की सबसे प्यारी वस्तु चित्रा थी। उसे मैं हृदय से चाहता था, किन्तु वह दूसरे की थी। मैं उसके योग्य न होते हुए भी अनाधिकार उसे पाने की चेष्टा करता था। वह जिसकी थी, उसे मिल गई, किन्तु उसके बिना मेरा संसार शून्य हो गया। उसे पाने के लिए मैं अपना सर्वस्व त्याग दे रहा हूँ। इसे आप प्रेम कहें या पागलपन, इसीलिए यहाँ से जा रहा हूँ। जब तक जीवित रहूँगा उसी के नाम की माला जपूँगा।

उसने कहा है पुनः अगले जन्म में मिलेगी। उसका यह वाक्य मुझे सता रहा है। मिलने के लिए हृदय व्याकुल हो रहा है। चित्रा मेरे रोम-रोम में नृत्य कर रही है पिताजी! मैंने उसे बहन कह दिया किन्तु हृदय न जाने क्यों असफल है। यह कैसी पहेली, कैसी उलझन है? इसे हल करने मैं जा रहा हूँ। क्षमा करना पिताजी, प्रणाम।

आपका—
शरद

• •

उषाकाल का स्निग्ध समय, बड़ा ही आकर्षक था। चित्रा का मुख-मण्डल चमक रहा था। उसने अपने प्रेम को सफल करने के लिए सब कुछ त्याग दिया था।

नौका तरङ्गों से इठलाती हुई चली जा रही थी। गंगा की लहरें बड़ी भयानक गति से उठ रही थीं किन्तु उन दोनों को तनिक परवाह न थी, वे संसार के हृदय को बड़ी दिलेरी से देख रहे थे।

चित्रा वास्तव में आज जीवन के साथ उदीयमान तारे की प्रतीत हो रही थी। शरद की याद स्वप्नवत थी किन्तु उस य उसे दुनिया की बातें सोचने की कांक्षा न थी।

वे दोनों प्रेम से गदगद हो नौका पर निरुद्देश्य भाव से चले ा रहे थे। ठीक उसी समय उसने कहा—

"जीवन ! अपना वही गाना गाओ।"

"कौन ?" जीवन ने पूछा।

"वही जो उस दिन उषाकाल में फटकारने वाले बाबू के यहाँ या था।"

"अच्छा, हाँ याद आया, तुम वहाँ क्या कर रही थी ?"

वह कुछ न बोली। जीवन ने गाया।

मेरी आशाओं की दुनिया दयादीप से जल जाये।
आज हमारे हिय की मुरझाई कलियाँ भी खिल जायें।

उसने खूब जी खोल कर गाया। सुनते ही चित्रा दीवानी-सी गई।

ठीक उसी समय सुन पड़ा।

"चित्रा ! मेरी बेटी...चित्रा ! लाल, मेरे लाल ! लौट आओ... ट आओ लाल, इस थोड़ी-सी जिन्दगी के लिए लौट आओ।"

दोनों ने घूम कर देखा—

जीवन तो नहीं किन्तु चित्रा ने पहचान लिया।

"बाबूजी !" जोर से पुकारा उसने।

दूसरे ही क्षण बाबूजी को चित्रा हाथ जोड़े-सी प्रतीत हुई।

"लौट आओ ?" पुनः बाबूजी ने पुकारा।

किन्तु नौका आँखों से दूर....क्षितिज के पास बही जा थी।

० समाप्त ●